पंजाबी साहित्य
का
नवीन इतिहास

ले
ज्ञानेन्द्रपा

प्रकाशक
आशा प्रकाशन गृह
करौल बाग, नई दिल्ली-५

प्राक्कथन

पंजाबी भारत की एक प्राचीन भाषा है। परन्तु इस भाषा का विकास इतना नही हो सका, जितना हिन्दी, उर्दू, बंगला आदि अन्य भाषाओं का हुआ है। इसका प्रमुख कारण इसके प्रति राजकीय प्रोत्साहन का अभाव ही कहा जा सकता है। इसके साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि पंजाबी एक ऐसे क्षेत्र (पजाब) की भाषा है, जहाँ के लोगों की रुचि लेखन-कार्य की ओर कम रही है। इसका कारण यह है कि यहाँ के लोगों को किसी-न-किसी युद्ध मे सलग्न रहना पड़ा। भारत पर जितने भी विदेशी आक्रमण हुए, उनमे यूरोपीय जातियों को छोड़कर सभी उत्तर-पश्चिमी मार्गों से हुए। परिणामस्वरूप पजाब को ही सर्वप्रथम इन आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। ये आक्रमणकारी धन-लिप्सा से प्रेरित होकर भारत पर आक्रमण किया करते थे। इससे प्रभावित *होकर यहाँ के निवासियों के सामने दो ही कार्य रह गये—आक्रमण के* समय डट कर युद्ध करना तथा शान्ति-काल मे परिश्रम कर कृषि आदि करना तथा आनन्दपूर्वक जीवन बिताना।

ऐसी अवस्था मे यहाँ भाषा के विकास, साहित्य-संवर्द्धन, दार्शनिक ग्रन्थों के मनन-चिन्तन की ओर इतना बल नहीं दिया गया, जितना भारत के अन्य भागों मे। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पंजाबी भाषा में कोई लेखन-कार्य हुआ ही नहीं है। चाहे कम हुआ है, फिर भी इसमें सुन्दर साहित्य का सृजन हुआ है। सिक्खों के दस गुरुओं तथा अन्य अनेक सन्तों ने इस भाषा में जो भक्ति साहित्य की धारा प्रवाहित की है, उस पर पजाबी ही नही, प्रत्येक भारतवासी को गर्व है। सूफी कवि, प्रेम-कथा-कार, आधुनिक काल के आलोचक तथा कवि-वर्ग ने जो साहित्य प्रस्तुत किया है, वह भी कम प्रशंसनीय नहीं है।

साहित्यिक आलोचना को दिया है। विभिन्न विवादास्पद विषयों पर अधिक से अधिक विद्वानों के मतों को उद्धृत किया गया है तथा अन्त में अधिक उपयुक्त मत का निर्णय भी।

अपने इस प्रयास में मैंने अनेक ग्रन्थों से सहायता प्राप्त की है। इन सभी ग्रन्थों के रचयिताओं के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हो सका हूँ, यह विज्ञ पाठक ही बता सकेंगे। बहुत सम्भव है कि इसमें अनेक त्रुटियाँ विद्यमान हों। पाठकों के त्रुटि-सम्बन्धी सुझावों के लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँगा तथा अगले संस्करण में त्रुटियों का परिमार्जन करने का भी प्रयास करूँगा।

१४ नवम्बर, १९६४ —ज्ञानेन्द्र

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

अध्याय-१

पंजाबी भाषा का उद्भव तथा विकास

भारत एक विशाल देश है। पंजाब इसका एक बड़ा प्रान्त है। पंजाब की भाषा पंजाबी है। पंजाबी के विद्वान् इस भाषा का मूल स्रोत वैदिक भाषा से मानते हैं। बात है भी ठीक। सभी आर्य भाषाओं का मूल वैदिक भाषा ही है। यह बात अलग है कि संसर्ग भेद से तथा प्रभाव-ग्रहण की विभिन्नता के कारण आज की भाषाएँ इतनी विकसित तथा भिन्न हो चुकी हैं कि उनका एक ही भाषा से उद्भव मानना कभी-कभी सन्दिग्ध लगने लगता है। यह तथ्य हम पंजाबी के लिए भी कह सकते हैं। कारण स्पष्ट ही है। भारतवर्ष में जितनी भी विदेशी जातियाँ आयीं, उनमें यूरोपीय जातियों—अंग्रेज, फ्रांसीसी आदि—को छोड़कर सभी जातियाँ उत्तर-पश्चिमी दर्रों से आयीं तथा उनका सर्वप्रथम सामना पंजाबवासियों को ही करना पड़ा। परिणामस्वरूप पंजाबवासियों ने सभी जातियों से सांस्कृतिक, सामाजिक तथा भाषा आदि का आदान-प्रदान किया, तथा अन्य बातों के साथ ही पंजाबी पर भी अनेक भाषाओं का प्रभाव पड़ा। किस भाषा का कितना प्रभाव पड़ा, इसका विवेचन तो अत्यन्त विस्तृत हो जायेगा, परन्तु संक्षेप में एक-दो का परिचय देना उपयुक्त ही होगा।

विदेशी जातियों का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव

सर्वप्रथम वे जातियाँ विवेचनीय हैं, जो आर्यों के भारत

में आने से पूर्व यहां आयी थी। इतिहास-वेत्ताओं के अनुसार सर्वप्रथम नीग्रो नस्ल के इथोपियावासी यहां आकर बस गए थे। इसके पश्चात् आस्ट्रिक जाति यहां आयी। कहा जाता है कि इसकी भाषा अत्यन्त समृद्ध थी। यह भाषा पंजाब से लेकर न्यूज़ीलैण्ड तथा अफ्रीका के पास मेडागास्कर तक फैली हुई थी। इसके अतिरिक्त चीन की ओर से मंगोल जाति भी भारत में आयी जो नेपाल, सिक्किम तथा अन्य दूसरे पर्वतीय प्रदेशों में बस गयी। मंगोलों की भाषा का प्रभाव आस्ट्रिकों की भाषा पर पड़ा।

इन जातियों के पश्चात् द्रविड़ जाति रोम सागर के किनारों से चलती हुई भारत में आयी तथा पंजाब व सिन्ध के मैदानों में बस गयी। सिन्धु घाटी की सभ्यता की निर्माता यही जाति थी। इतिहास-वेत्ताओं के अनुसार हड़प्पा तथा मोहन-जोदड़ो में इन्हीं की संस्कृति के अवशेष उपलब्ध होते हैं। इनकी भाषा पर आस्ट्रिक जाति की भाषा का प्रभाव पड़ा तथा आर्यों के आगमन पर आर्यों की भाषा पर—विशेष रूप से पंजाब-वासियों की भाषा पर—द्रविड़ों की भाषा का प्रभाव पड़ा।

इसके बाद जब आर्यों का आगमन हुआ, तो उन्होंने द्रविड़ों को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। परन्तु कुछ द्रविड़ समूहों ने आर्यों की दासता स्वीकार कर ली तथा वे पंजाब में ही बस गए। पंजाब की चूड़े, चंगड़ तथा महतो आदि जातियाँ इन्हीं की नस्ल में से हैं। आर्यों ने इस देश का नाम 'आर्यवर्त्त' रखा तथा सप्त सिन्धु के किनारों पर बैठ कर जिस भाषा में वेदमन्त्रों का उच्चारण किया, वह विद्वानों के मत से वैदिक या पहली प्राकृत भाषा मानी जाती है।

आर्यों के पश्चात् शक, हूण, ईरानी, यूनानी, मुगल,

पठान आदि अनेक जातियाँ भारत में आयी। अनेक जातियाँ लूटमार कर के चली गयीं तथा अनेक यहाँ बस गयीं। भारत-वासियों ने अपनी समन्वयात्मिका शक्ति से इन सभी जातियों की संस्कृति, भाषा आदि को अपने में इस प्रकार पचा लिया कि आज इनमें से अनेकों का नाम-निशान तक नहीं बचा है। कहने का तात्पर्य यही है कि इन सभी जातियों की भाषा का पंजाब-वासियों की भाषा पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा।

वैदिक भाषा का विकास

किसी भी भाषा के दो रूप होते हैं--(१) साहित्यिक रूप तथा (२) लोक रूप। भाषा के लोक रूप में निरन्तर विकास या परिवर्तन होता रहता है। कालान्तर में लोक भाषा इतनी परिवर्तित हो जाती है कि रचना विधान और सम्बन्ध तत्व में साहित्यिक भाषा से भिन्न हो जाती है। परिणाम-स्वरूप उसका व्याकरण बनाया जाता है तथा एक नयी भाषा के रूप में वह जानी जाती है। जब आर्य लोग बंगाल, आसाम, उड़ीसा आदि की ओर फैले तो वैदिक भाषा के साहित्यिक व लोक भाषा के स्वरूपों में अन्तर पड़ने लगा। लोक भाषा के तीन रूप बने--(१) उदीच्य, (२) मध्यदेशीय तथा (३) प्राच्य। आगे चलकर मुख्य रूप से मध्यदेशीय रूप को आधार बनाकर व्याकरण का निर्माण हुआ तथा यह शुद्ध की हुई भाषा संस्कृत कहलाने लगी।

लोक भाषा फिर भी निरन्तर विकास करती रही तथा आगे चल कर प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रान्तभेद से प्राकृत मुख्य रूप से पाँच रूपों में दृष्टिगोचर होती है--(१) शौरसेनी, (२) महाराष्ट्री, (३) पैशाची, (४) मागधी तथा (५) अर्द्धमागधी। ये प्राकृतें भी निरन्तर विकसित होती रहीं तथा

कालान्तर में अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध हुई।

पैशाची से पंजाबी का उद्‌भव

पैशाची प्राकृत से विकसित होने वाली अपभ्रंश का पर बहुत प्रभाव पड़ा। सिंध से लेकर सरस्वती नदी प्रदेश की यह साहित्यिक भाषा रही। बाद में इसी क टक्की या कैकेय भी पड़ा।

सन् ७१२ ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध को किया तथा वहाँ पर अरब राज्य स्थापित हो गया। मु उनका सैनिक केन्द्र था। यह प्रदेश सूफियों का भी केन्द्र सूफी अपने मत के प्रचार के लिए कोई ऐसी भाषा चा जो सर्वाधिक जन-सुलभ हो। उन्होंने पंजाब की जन जोकि पैशाची अपभ्रंश का ही विकसित रूप थी—को अ तथा उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का भी समावेश कि अरब राज्य तो लगभग पचास वर्ष के पश्चात् समाप्त गया, परन्तु मुसलमान यहीं बसे रह गए। सन् ९९४ गजनी वंश के सुलतानों ने भारत पर आक्रमण प्रारम्भ दिए। सन् १००० ई० में महमूद गजनवी ने लाहौर अधिकार कर लिया। सन् १०३० ई० तक सारे पंजाब गजनी के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। लाहौ पंजाब की राजधानी बनाया गया।

इस प्रकार मुसलमानों के सम्पर्क से पंजाब की जन- ने जो एक नया रूप ग्रहण किया, वही कालान्तर में प कहलायी। इस भाषा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान् अलबरू भी लिखा है। अलबरूनी १०वीं शताब्दी के लगभग पंजा भाषा था। उसने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया था। लिखता है 'लाहौर में जो बोलियाँ प्रचलित हैं . . .

केवल विद्वान् ही समझते हैं तथा लिख सकते हैं। यह बोली व्याकरण के नियमों पर आधारित है। दूसरी बोली को हिन्दू तथा मुसलमान दोनों बोलते और समझते हैं।' इस प्रकार कहा जा सकता है कि सन् १००० ई० के आस-पास पजाबी भाषा का उद्भव पैशाची अपभ्रंश मे हो चुका था, परन्तु अरबी, फारसी, आभीरी तथा अन्य अनेक भाषाओं का भी इस के स्वरूप-निर्माण में पूरा योगदान रहा है।

पंजाबी का विकास

सुविधा के लिए पंजाबी भाषा के विकास को पाँच भागों मे विभाजित किया जा सकता है—

१ प्रथम विकास—१६वी शती से पूर्व का युग।
२. द्वितीय विकास—१६वीं तथा १७वीं शती का युग।
३. तृतीय विकास—१८वीं शती का युग।
४. चतुर्थ विकास—सन् १७६६ से १८६० तक का युग।
५. पचम विकास—सन् १८६० से अब तक का युग।

पंजाबी भाषा की कुछ झलक हमें सर्वप्रथम अब्दुर्रहमान के 'सन्देश रासक' में मिलती है। हिन्दी के विद्वान् इसे हिन्दी का ग्रन्थ स्वीकार करते हैं, परन्तु इसमें पजाबी का भी पर्याप्त रूप विद्यमान है। कारण यह है कि ११वी शती में शौरसेनी तथा पैशाची अपभ्रंश एक-दूसरे के कुछ अधिक निकट थीं। फिर उस काल में भाषा अपभ्रंश से विकसित हो रही थी। 'सन्देश रासक' की भाषा को हम आज की भाषा तथा अपभ्रश के बीच का रूप मान सकते है। अब्दुर्रहमान मुलतान का रहने वाला था, जहाँ बैठकर ही उसके द्वारा इस ग्रंथ की रचना हुई थी। अतः सन्देश रासक को ही पंजाबी के प्रथम रूप का ग्रंथ कह सकते हैं।

केवल विद्वान् ही समझते हैं तथा लिख सकते है। यह बोली व्याकरण के नियमों पर आधारित है। दूसरी बोली को हिन्दू तथा मुसलमान दोनों बोलते और समझते है।' इस प्रकार कहा जा सकता है कि सन् १००० ई० के आस-पास पजाबी भाषा का उद्‌भव पैशाची अपभ्रंश से हो चुका था, परन्तु अरबी, फारसी, आभीरी तथा अन्य अनेक भाषाओं का भी इस के स्वरूप-निर्माण में पूरा योगदान रहा है।

पंजाबी का विकास

सुविधा के लिए पंजाबी भाषा के विकास को पाँच भागों मे विभाजित किया जा सकता है—

१ प्रथम विकास—१६वीं शती से पूर्व का युग।
२. द्वितीय विकास—१६वीं तथा १७वीं शती का युग।
३. तृतीय विकास—१८वीं शती का युग।
४. चतुर्थ विकास—सन् १७९९ से १८६० तक का युग।
५. पंचम विकास—सन् १८६० से अब तक का युग।

पंजाबी भाषा की कुछ झलक हमें सर्वप्रथम अब्दुर्रहमान के 'सन्देश रासक' में मिलती है। हिन्दी के विद्वान् इसे हिन्दी का ग्रन्थ स्वीकार करते हैं, परन्तु इसमें पजाबी का भी पर्याप्त रूप विद्यमान है। कारण यह है कि ११वीं शती में शौरसेनी तथा पैशाची अपभ्रंश एक-दूसरे के कुछ अधिक निकट थी। फिर उस काल मे भाषा अपभ्रंश से विकसित हो रही थी। 'सन्देश रासक' की भाषा को हम आज की भाषा तथा अपभ्रंश के बीच का रूप मान सकते हैं। अब्दुर्रहमान मुलतान का रहने वाला था, जहाँ बैठकर ही उसके द्वारा इस ग्रंथ की रचना हुई थी। अतः सन्देश रासक को ही पजाबी के प्रथम रूप का ग्रंथ कह सकते हैं।

१५वीं शती से पूर्व के पंजाबी साहित्य में डॉ० मोहनसिंह ने अनेक रचनाओं को स्वीकार किया है। कुछ के नाम इस प्रकार दिये जा सकते हैं—

१. चरपटनाथ (सन् ८६०-६६०) की वाणी।
२. गोरखनाथ (सन् ६४०-१०३१) की वाणी।
३. अमीर खुसरो (सन् ११५३-१२१५) की मुलतानी तथा लाहौरी बोली के मिश्रित रूप में लिखी गयी पहेलियाँ।
४. चन्द बरदाई का पृथ्वीराज रासो।

और भी अनेक रचनाओं के नाम उन्होंने गिनाये हैं, परन्तु विद्वानों में इन ग्रंथों की भाषा के सम्बन्ध में गहरा विवाद है। कारण यह है कि इन सभी ग्रंथों की भाषा का रूप जीर्णोद्धारकर्त्ताओं के कारण इतना परिवर्तित हो चुका है कि इनकी भाषा पंजाबी ही है, अन्य नहीं। फिर प्रक्षिप्त अंश की भरमार के कारण इनके मूल रूप का पता ही चलना कठिन है कि कितना अंश वास्तविक है, तथा कितना परवर्त्ती।

१६वीं शती से पूर्व के युग में बाबा फरीद का नाम लिया जा सकता है। आपकी वाणी दोहों के रूप में गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित है। कबीर आदि अनेक निर्गुणियाँ सन्तों की वाणी में भी पंजाबी का पुट मिलता है। इनके अनेक दोहे गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित हैं। पंजाब में वार साहित्य का सृजन प्रारम्भ हो गया था। इनमें प्रायः वीर योद्धाओं की गौरव-गाथा होती है। शैली प्रायः गरिमामयी तथा ओज गुण सम्पन्न होती है।

[illegible]ीं शती में मुगल राज्य का प्रारम्भ होता है। यह [illegible] साहित्य के लिए 'स्वर्ण-युग' कहा जा सकता है।

कार का साहित्य पजाबी भाषा में लिखा गया। प्रेम-
की कहानियाँ लिखी गयी। इनमें राजा भर्तृहरि, राजा
पूरन भगत, इच्छराँ आदि का नाम लिया जा सकता
लमानों ने भी लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, अमीर
आदि की प्रेम-कथाएँ लिखी। गुरुओं के द्वारा सबसे
साहित्य का सृजन इस युग में हुआ। सच्ची धार्मिक
तथा आध्यात्मिकता से पूर्ण और साम्प्रदायिकता से
साहित्य का सृजन हुआ, जो शरीर, मन तथा आत्मा
की ही भूख एक साथ मिटाता है।

हवीं शती का समय राजनीतिक वैषम्यों का युग है।
में भी पजाबी भाषा विकास ही करती रही। बुल्लेशाह
फियाँ, वारिसशाह का "हीर-रांझा", नजावत की
शाह की वार' आदि अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ हैं। गद्य के
भाई मनीसिंह का नाम लिया जा सकता है। इनकी
तथा पर्चियाँ सुन्दर रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त गीता
धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद भी इस युग में हुए।
वी शती में महाराजा रणजीतसिंह के शासन-काल में
को बहुत प्रोत्साहन मिला। कादिरयार का पूरन भगत
, हसमद की लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद तथा सस्सी-
र रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त गुलाम अहमद अल्लाह
याँ हुसैन, इमाम बख्श आदि का नाम भी उल्लेखनीय

बी भाषा का पाँचवाँ विकास भारत पर अंग्रेजों के
से प्रारम्भ होता है। अंग्रेजी सभ्यता के प्रसार से
रों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। साहित्य की सभी
आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए। पजाबी साहित्य की

१०. डा० चरणसिंह का 'वाणी व्योरा'।
११. रेव० डब्ल्यू० पी० हारेस की 'ऐंग्लो-पंजाबी डिक्शनरी'।

पंजाबी भाषा का नामकरण तथा इसकी बोलियाँ

नामकरण

आर्यों ने भारत प्रवेश किया तो सिन्धु से लेकर सरस्वती नदी तक के प्रदेश में बस गये। इस भूखंड को उन्होंने सात नदियों के आधार पर सप्त सिन्धु कहा। बाद में सिन्धु नदी के आस-पास का क्षेत्र सिन्धु प्रदेश अलग हो गया तथा सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब तथा जेहलम के प्रदेश को पाँच नदियों के आधार पर 'पंचनद' कहा जाने लगा।

वर्तमान पंजाबी इसी पंचनद प्रदेश की भाषा है। पंजाबी का मूल स्रोत वैदिक भाषा है, यह हम पहले ही विवेचित कर चुके हैं। विचारणीय विषय यह है कि पंचनद का नाम पंजाब कब तथा कैसे पड़ा तथा इसके आधार पर ही किसने सर्वप्रथम इस प्रदेश की भाषा को पंजाबी कहा? कहा जाता है, सर्वप्रथम पंचनद को अमीर खुसरो ने पंजाब कहा था। कथा इस प्रकार है :—

गुलाम वंश के सुलतान बलबन का पुत्र पंजाब की सीमाओं का रक्षक था। अमीर खुसरो उन्हीं के दरबार में रहते थे। मुगलों (मंगोलों) ने पंजाब पर आक्रमण किया तथा बलबन का पुत्र इस युद्ध में मारा गया। अमीर खुसरो को बन्दी बनाया गया, पर बाद में स्वतन्त्र कर दिया गया। दिल्ली आकर अमीर खुसरो ने मृत राजकुमार की प्रशंसा में एक शोक गीत (मरसिया) लिखा। इसमें उनने लिखा 'राजकुमार की मृत्यु का

अध्याय : २

गुरुमुखी लिपि

लिपि—किसी भी भाषा की विशिष्ट ध्वनियों के लिए निश्चित किए गए चिह्नों के समूह को लिपि कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि भाषा के लिखित रूप के माध्यम का ही नाम लिपि है।

लिपि का जन्म कब हुआ, इसके विषय में निश्चित रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु भाषा-विज्ञान वेत्ताओं का अनुमान है कि ईसा से लगभग १०००० वर्ष पूर्व लिपि के निर्माण सम्बन्धी प्रयत्न प्रारम्भ हुए थे, और ईसा के ४००० वर्ष पूर्व तक लिपि का कोई रूप नहीं बन सका था। सर्वप्रथम मानव ने चित्रों के माध्यम से अपने विचारों को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया था। चित्र लिपि के पश्चात् सूत्र लिपि, सकेत लिपि, प्रतीकात्मक लिपि आदि से विकसित होते हुए अंत में वर्ण लिपि तथा ध्वनि लिपि का निर्माण हुआ। आज ससार की प्रायः सभी लिपियाँ वर्ण लिपि या ध्वनि लिपि बन चुकी हैं।

गुरुमुखी की उत्पत्ति

गुरुमुखी लिपि का जन्म कब तथा कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने खोज की है। इन विद्वानों में मतभेद भी पाया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों में डॉ० ग्रियर्सन, प्रो० बीम्स तथा लाइटनर और भारतीय विद्वानों में भाई काहनसिंह, बाबा बुधसिंह, डॉ० मोहनसिंह [illegible]

बी० सिंह का नाम उल्लेखनीय है। पाश्चात्य विद्वानों ने गुरुमुखी के सम्बन्ध में चार बातें कही हैं :—

१. गुरुमुखी की वर्णमाला गुरु अंगददेव जी ने बनायी है।
२. गुरुमुखी से पहले पंजाब में केवल लंडे ही प्रचलित थे।
३. गुरुमुखी की मात्राएं देवनागरी लिपि से ली गयी हैं।
४. डॉ० ग्रियर्सन के मत से गुरुमुखी का विकास शारदा लिपि से हुआ है।

परन्तु इन चारो ही बातों को भारतीय विद्वान् पूर्णतया स्वीकार नही करते। जी० बी० सिंह बड़े विश्वास के साथ इन चारों ही बातों का खंडन करते हैं। उनके मत से गुरुमुखी लिपि की वर्णमाला गुरु नानकदेव जी से पहले ही विद्यमान थी। पंजाब के हिन्दू व्यापारियों ने इस वर्णमाला का निर्माण किया। गुरु नानकदेव जी की 'राग आसा' में दी गयी पट्टी नाम की बाणी में गुरुमुखी वर्णमाला के सभी अक्षर विद्यमान है।

दूसरे तथ्य के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि गुरु नानकदेव जी से पहले पंजाब में सिद्ध मात्रिका, अर्द्ध-नागरी, भटअक्षरी, शारदा तथा टाकरी लिपि प्रचलित थी।

पंजाबी भाषा के अनेक विद्वान् गुरुमुखी की मात्राओं को ...वनागरी की अपेक्षा शारदा तथा टाकरी लिपि की मात्राओं ... अधिक मिलती हुई मानते है।

श्री जी० बी० सिंह के मत से शारदा लिपि से गुरुमुखी ...ी मात्राएं मिलती हैं, इसी कारण ग्रियर्सन ने यह माना है कि ...सका विकास शारदा से हुआ है। परन्तु तथ्य यह है कि गुरु-...खी शारदा की अपेक्षा टक्की लिपि के अधिक निकट है।

श्री जी० बी० सिंह ने गुरुमुखी की उत्पत्ति के सम्बन्ध
भी विचार व्यक्त किए हैं। वे कहते हैं कि प्रसिद्ध विद्वान् प्र
रूनी ने भारतवर्ष में ग्यारह लिपियों का होना स्वीकार कि
है। इन्हीं लिपियों में से एक का नाम प्रर्द्धनागरी बताया
यह लिपि भाटी देश, जिसको आजकल भटिंडा कहते हैं, त
सिन्ध के कुछ भागों में प्रचलित थी। अर्द्धनागरी मालवा प्र
की लिपि नागर तथा सिद्ध मात्रिका लिपि के मेल से ब
है। इसका एक अन्य नाम भटप्रक्षरी भी है। गुरुमुखी इ
का विकसित रूप है।

गुरुमुखी लिपि का सबसे अधिक सम्बन्ध टाकरी लि
से है। तुलनात्मक दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो गु
मुखी की सभी प्रकार की मात्राएँ टाकरी की मात्राओं
मिलती हैं। दोनों में एक जैसी ही मात्राओं का उपयोग हो
है। वर्णमाला की दृष्टि से १५ अक्षर दोनों लिपियों में समा
रूप से पाये जाते है, ५ अक्षर काफी मिलते हैं तथा ६ अक्ष
कुछ-कुछ साम्य रखते हैं।

इसके विपरीत यदि अन्य लिपियों से तुलना की जाये
कम ही अक्षर समान पाये जाते हैं। शारदा लिपि के सा
अक्षर गुरुमुखी लिपि में समान रूप से पाये जाते हैं तथा १
अक्षर काफी साम्य रखते हैं। देवनागरी के तो केवल तीन ह
अक्षर गुरुमुखी में पाये जाते हैं, शेष में पाँच अक्षर देवनागरी
काफी मिलते हैं, १३ उससे कुछ-कुछ साम्य रखते हैं।

इस प्रकार निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुरुमुख
लिपि का सबसे अधिक सम्बन्ध टाकरी लिपि से है। शारद
से भी इसका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। इसीलिए गुरुमुख
लिपि का विकास इन दोनों से ही हुआ है।

नामकरण---प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस लिपि का नाम गुरुमुखी क्यों पड़ा ? आज सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि गुरु अंगददेव जी ने गुरुमुखी लिपि का निर्माण नहीं किया था। गुरुमुखी लिपि गुरु नानकदेव जी से पहले विद्यमान थी। पंजाब के हिन्दू व्यापारी इसे अपने कार्यों में प्रयुक्त करते थे। कहा जाता है कि गुरु अंगददेव जी ने अपने पुत्रों को वर्णमाला का ज्ञान कराने के लिए एक बाल बोध बनाया था. श्रद्धालु भक्तों ने प्रचलित कर दिया कि गुरु अंगददेव जी ने गुरुमुखी का निर्माण किया। परन्तु वास्तविकता केवल इतनी ही है कि गुरुओं ने जहाँ अपने विचार जन-सामान्य की भाषा पंजाबी में प्रगट किये, वहाँ लिपि भी गुरुमुखी ही अपनाई। गुरुओं के मुख से निकली वाणी को जिस लिपि में लेखबद्ध किया, वह भक्तजनों के द्वारा गुरुमुखी के नाम से पुकारी जाने लगी तथा सभी में यह नाम प्रचलित हो गया। सरदार प्यारासिंह इसके नामकरण के सम्बन्ध में कहते हैं---

"जिस प्रकार ब्रह्मावर्त वासों की लिपि का ब्राह्मी नाम पड़ा, जिस प्रकार देवनगर (उज्जैन) या नागर ब्राह्मणों के द्वारा प्रयुक्त होने वाली लिपि देवनागरी कहलाने लगी, उसी प्रकार सरस्वती नदी के किनारे बसने वाले सदा शारदादेवी का ध्यान करने वाले पंजाबियों की शारदा लिपि टक्क जाति के व्यक्तियों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण टाकरी कहलाई। जोगी तथा सिद्ध संतों के कारण इसे सिद्ध मात्रिका कहा गया। मुगलों के राज्य में जब पंजाबी बोली तथा लिपि दब गई तो देश का स्वाभिमान जगाने वाले गुरुओं ने उसका उद्धार किया। क्योंकि गुरुओं को मानने वाले व्यक्ति गुरुमुख कहलाते थे,

इसलिए इनके द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इस लिपि का नाम गुरुमुखी पड़ा।

गुरुमुखी लिपि की विशेषताएँ

१. भारत की अन्य लिपियों की भांति ही इसके वर्णों का क्रम भी वैज्ञानिक है। एक ध्वनि दूसरी ध्वनि से सम्बन्धित होती है।

२. अक्षरों की बनावट सुन्दर है।

३. अनेक अक्षर बिना कलम उठाये ही बन जाते हैं, इस कारण से इसकी लिखने की गति भी काफी तीव्र है।

४. पंजाबी भाषा की सभी ध्वनियों को ठीक प्रकार से उपस्थित करने में इसकी वर्णमाला समर्थ है।

५. वर्णमाला अत्यन्त कम है। केवल ३६ अक्षर ही प्रयुक्त होते हैं।

६. अक्षरों की बनावट अत्यन्त सरल है।

७. एक वर्ण की केवल एक ही ध्वनि है। इसके अतिरिक्त एक ध्वनि के लिए एक ही अक्षर का प्रयोग होता है।

अध्याय ३

पंजाबी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन

साहित्य के इतिहास में किसी भी काल का नाम उस काल के वैशिष्ट्य के आधार पर रखा जाता है। यह वैशिष्ट्य प्रायः चार बातों का होता है—(१) रचयिता, (२) कृति, (३) पद्धति तथा (४) विषय। हिन्दी साहित्य के इतिहास में चारण काल का नाम रचयिता के आधार पर, वीरगाथा काल का नाम कृति के आधार पर, छायावादी युग का नाम पद्धति के आधार पर तथा भक्ति काल का नाम विषय के आधार पर रखा गया था।

किसी भी काल के नामकरण तथा समय-विभाजन के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि यह इस प्रकार से होना चाहिये, जिससे उस काल या युग की प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ सके तथा वह अन्तर विभाजन में सुविधाजनक हो। नाम ग्रंथों की अधिकता तथा प्रसिद्धि पर आधारित होना चाहिये।

वस्तुतः नाम चाहे रचयिता, कृति, विषय तथा पद्धति किसी पर भी आधारित हो, पर वह ऐसा अवश्य होना चाहिये, जिससे युग-विशेष पर अधिक-से-अधिक प्रकाश पड़ सके तथा वह बहु-संख्यक का प्रतिनिधि हो। पंजाबी साहित्य का काल-

विभाजन अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम पहले उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये काल-विभाजन का विवेचन करें तथा तब उनमें उचित काल-विभाजन का निर्णय करें।

सर्वप्रथम बावा गुरसिंह ने पंजाबी भाषा तथा पंजाबी साहित्य पर 'हस चोग' में विचार किया। आपने पंजाबी साहित्य के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया :—

१. प्राचीन काल।
२. मध्य काल।
३. आधुनिक काल।

परन्तु आपका यह काल-विभाजन युक्ति-संगत नहीं है। इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। प्रथम तो इसमें किसी भी काल के साहित्य का समय निर्धारित नहीं किया गया है। फिर इस नामकरण से न तो किसी विशिष्ट धारा का पता चलता है, न रचना-विशेष का। किसी भी प्रकार के ग्रंथों का इससे परिचय नहीं मिलता। काल का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं होता।

इनके पश्चात् डॉ० बनारसीदास ने अपनी रचना 'पंजाबी लिटरेचर' में काल-विभाजन धर्म के आधार पर किया :—

१. सिक्ख-साहित्य।
२. हिन्दू-साहित्य।
३. धर्म-साहित्य।
४. मुसलमान-साहित्य।
५. ईसाई-साहित्य।
६. नये आन्दोलन का साहित्य।

आपके नामकरण में भी अनेक त्रुटियाँ हैं। न तो इस

नामकरण से काल-विशेष पर प्रकाश पड़ता है, न साहित्य
ही स्वरूप स्पष्ट होता है। यह नामकरण एक प्रका
हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों में पार्थक्य उत्पन्न क
वाला है। साहित्य का विभाजन न तो रचयिता के ध
आधार पर ही होना चाहिये और न ही हिन्दी आदि ि
अन्य भाषा में ऐसा हुआ है।

डॉ० सुरेन्द्रसिंह कोहली ने भी अपने पंजाबी साहित्
इतिहास में काल-विभाजन इस प्रकार किया है :—

१. गुरुमत साहित्य।
२. सूफी साहित्य।
३. वार साहित्य।
४. नया साहित्य।

डॉ० सुरेन्द्रसिंह कोहली द्वारा किया गया काल-विभ
पूर्व के विद्वानों से अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर तथा उपयुक्त
परन्तु फिर भी इसे सर्वोत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। गु
का साहित्य तो केवल गुरुओं के द्वारा ही रचा गया था। इ
अर्थ हुआ गुरुमत साहित्य के निर्माण समय में केवल
से सम्बन्धित साहित्य ही रचा गया, अन्य कोई साहित्य न
परन्तु हम देखते हैं कि इसके साथ ही उसी समय में वार सा
भी लिखा गया था। इस नाम से समय-विशेष का स
स्पष्ट नहीं होता। इसी प्रकार इस समय प्रेम-गाथा
लिखी गईं। उदाहरण के लिए हीर-राँझा, सोहनी-महि
इत्यादि। अभिप्राय यह कि इस प्रकार के साहित्य क
विभाजन अथवा नामकरण में कोई स्थान नहीं है। इसी प्र
यह नामकरण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नाम
धारा के अनुरूप तो हो सकता है, परन्तु वर्ग-विशेष के सा

के आधार पर नामकरण अधिक उचित नहीं कहा जा सकता।

डॉ० मोहनसिंह ने भी पंजाबी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन किया है। आपने पंजाबी साहित्य में सिद्धों तथा नाथों का साहित्य भी सम्मिलित कर लिया है। आपने काल-विभाजन कुछ इस प्रकार किया है :—

१. पूर्व नानक साहित्य (सन् ८५० से १४५० तक)।
२. नानक युग (सन् १४५० से १७०० तक)।
३. मुगल काल (सन् १७०० से १८०० तक)।
४. रणजीतसिंह युग (सन् १८०० से १८५० तक)।
५. आधुनिक काल (सन् १८५० से अब तक)।

डॉ० मोहनसिंह का काल-विभाजन काफी अच्छा है। परन्तु इसमें भी कुछ कमियाँ उपलब्ध होती हैं। एक तो समय का विभाजन कहीं-कहीं दोषपूर्ण है। महाराजा रणजीतसिंह का समय सन् १८६० तक माना जाना चाहिये था, परन्तु आपने सन् १८५० तक ही माना है।

आपके पश्चात् प्रो० कृपालसिंह कसेल ने भी अपने इतिहास में काल-विभाजन किया है :—

१. मुगलों से पूर्व का साहित्य (सन् ७०० से सन् १५२० तक)।
२. मुगल काल (सन् १५२० से १७१० तक)।
३. मुगलों के पतन का समय (सन् १७१० से १८५० तक)।
४. सन् १८५० से बाद का समय।

सन् १८५० के बाद के काल को आपने कई भागों में बाँटा है :—

(क) सन् १८५० से १९०० तक धार्मिक आन्दोलन का समय।

(ख) सन् १९०० से १९३० तक भाई वीरसिंह जी का युग।

(ग) सन् १९३० से १९४७ तक स्वतन्त्रता की लहर का युग।

(घ) सन् १९४७ से अब तक आधुनिक काल।

कसेल जी का वर्गीकरण भी निर्दोष नहीं कहा जा सकता। पहला दोष तो यही है कि वर्गीकरण में सरलता नहीं है। साहित्य की धारा ऐसी नहीं होती कि किसी सन् विशेष में एकदम से परिवर्तित हो जाये। इसलिए साहित्य का काल-विभाजन प्रायः शतियों में किया जाता है। यह कहना अधिक ठीक नहीं है कि मुगल काल में जो-जो साहित्य की धारा थी, वह सन् १७१० में एकदम समाप्त हो गई।

प्रिंसिपल तेजासिंह ने भी पंजाबी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन किया। आपका काल-विभाजन कुछ इस प्रकार है :—

१. पूर्व नानक युग (सन् ११०० से सन् १५०० तक)।

२. गुरुओं का युग (सन् १६०० से १७वीं शती के अन्त तक)।

३. उत्तर मुगल काल (१८वीं शताब्दी तक)।

४. रणजीतसिंह युग (सन् १७९९ से १८६४ तक)।

५. आधुनिक काल (सन् १८६४ से अब तक)।

आपका यह काल-विभाजन सभी काल-विभाजनों में सर्वोत्कृष्ट है। परन्तु फिर भी इसमें एक-दो सुधारों की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए रणजीतसिंह युग सन् १८६०

तक ही मानना उचित होगा। जहाँ तक युगों के नामकरण का प्रश्न है, पंजाबी साहित्य में किसी भी काल में किसी एक धारा का प्राधान्य नहीं रहा। गुरुओं के युग में भी जहाँ भक्ति धारा चली, वहाँ वीर साहित्य भी लिखा गया। साथ ही प्रेम-गाथाएँ भी प्रचुर मात्रा में लिखी गईं। अतः यही उपयुक्त है कि जिस युग में जो व्यक्ति युग-चेतना का प्रतिनिधि रहा हो, उसी के नाम पर युग का नाम रखा जाये। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रिंसिपल तेजसिंह जी का वर्गीकरण ही सर्वोत्तम है।

अध्याय ४

पूर्व नानक युग

समय—पूर्व नानक युग का प्रारम्भ कब से होता है, इसके सम्बन्ध में पंजाबी साहित्य के विद्वानों में अत्यन्त मत-भेद पाया जाता है। प्रायः विद्वान् गुरु नानक से ही पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ मानते थे। इस प्रकार से पूर्व नानक युग का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। परन्तु आधुनिक शिक्षा के प्रकाश से आलोकित विद्वानों ने अनेक खोजें की तथा आज पंजाबी साहित्य की सीमाएँ काफी प्राचीन काल तक जा पहुँची हैं। परन्तु फिर भी एक सीमा निश्चित नहीं हो सकी है। डॉ० मोहनसिंह पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ नवी शती से मानते हैं। उनके मत में गोरख, चरपट आदि नाथ तथा सिद्धों की वाणी पंजाबी भाषा में ही है। उनका मुख्य तर्क यह है कि सभी नाथ पंजाब में हुए हैं, वहीं उन्होंने अपना समय व्यतीत किया था, इसलिए उनकी वाणी पंजाबी भाषा में ही होनी चाहिये।

हरचरणसिंह भी अपने पंजाबी साहित्य के इतिहास में मोहनसिंह जी का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि पंजाबी साहित्य लोक गीतों के रूप में दसवीं शती से भी पहले प्रारम्भ हो चुका था। विवाह के गीत, घोड़ी के गीत, पनघट के गीत आदि अनेक प्रकार के गीत तथा सामान्य जीवन में आने वाले विविध पर्वों पर गाये जाने वाले गीत जनता में

प्रचलित थे।

इसके विपरीत प्रो० गोपालसिंह दर्दी तथा प्रिंसिपल तेजासिंह पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ १२वीं शताब्दी से ही मानते हैं। प्रो० गोपालसिंह दर्दी अपने मत के समर्थन में कहते हैं कि यह खोज का विषय है कि गोरख, चरपट आदि नाथों के नाम से पाये जाने वाले साहित्य में कितना उनका है तथा कितना परवर्ती काल की रचना है। फिर नाथों के नाम से उपलब्ध साहित्य में भाषा की सादगी को देखते हुए ये रचनाएँ १००० वर्ष प्राचीन नहीं लगतीं।

प्रो० गोपालसिंह के तर्कों में काफी बल प्रतीत होता है। ९वीं व १०वीं शताब्दी के नाम से आज जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें इतना अधिक प्रक्षिप्त अंश पाया जाता है कि वास्तविकता का पता ही नहीं चलता। कारण यह है कि प्राचीन काव्य का अनेक बार जीर्णोद्धार हुआ है। जीर्णोद्धार-कर्त्ता प्रायः एक बार पूरा पद्य पढ लेते है तथा फिर लिखते हैं। परिणामस्वरूप कविता की तुक, क्रिया के रूप आदि ये अपने समय के प्रचलित रूप के अनुसार रखते जाते हैं। उसके साथ ही यदि कहीं पर कोई शब्द समझ में नहीं आया या कागज गल जाने, कट जाने, चूहे आदि के कुतर देने के कारण कोई पंक्ति भी समाप्त हो गई हो तो ये जीर्णोद्धार-कर्त्ता अपनी कवित्व-शक्ति का प्रयोग करके रिक्त स्थान को भर देते हैं। यदि जीर्णोद्धार-कर्त्ता शिष्य परम्परा या वंश परम्परा में से कोई सज्जन हुए तो वे अपनी रुचि के प्रसंगों पर अपने भाव-प्रकाशन व वाणी-विलास का जन्म-सिद्ध अधिकार समझते हैं। फल यह होता है कि ग्रन्थ का आकार जलधर रोग से ग्रसित व्यक्ति के पेट की भाँति बढ़ता ही चला जाता है।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि में पृथ्वीराज रासो को उद्धृत किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इसकी प्रामाणिकता पर काफी खोज की है। इसकी चार प्रतियाँ आज उपलब्ध है। सबसे पुरानी मानी जाने वाली प्रति के आकार से, सबसे बाद की प्रति लगभग चौगुने आकार की है। इसके साथ ही भाषा मे भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं, नामों तथा सन्-सवतों की दृष्टि से भी प्राचीन प्रति ही अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है।

अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि नाथ तथा सिद्धों के नाम से प्रचलित साहित्य उन्ही का है तथा भाषा भी अपना प्राचीन स्वरूप लिये हुए है। यहाँ यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि नाथों का साहित्य तथा लोक गीतों का साहित्य जन-सामान्य का साहित्य है। जनता की कठ-परम्परा में ही इनका निवास रहा है। जब जन-भाषा समय के साथ परिवर्तित होती चली जाती है तो फिर गीतो की भाषा किस प्रकार सुरक्षित रह सकी होगी। पजाबी साहित्य के गीत, टप्पे, माहिये, गिद्दे, बोलियाँ, पहेलियाँ तथा मुहावरे किसी भी प्रकार ६वी अथवा १०वी शताब्दी के नही माने जा सकते।

पण्डित राहुल साँकृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि अनेक विद्वान् आज प्राय. एकमत हैं कि लगभग दसवी शताब्दी तक अपभ्रंश मे ही साहित्य की रचना होती थी। साथ ही कही-कहीं साहित्यकारों का झुकाव लोक भाषा की ओर भी था तथा उससे जो मिश्रित भाषा का प्रयोग होता था, उसमें आधुनिक आर्य भाषाओं का कुछ रूप देखा जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि भी उस समय के उपलब्ध साहित्य से हो जाती है। मुलतान के रहने वाले अब्दुर्रहमान के 'सन्देश

रासक' को पंजाबी साहित्य के विद्वान् पंजाबी के प्रारम्भिक रूप का ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु इस ग्रन्थ की भाषा एक प्रकार से अपभ्रंश ही कही जा सकती है। हाँ, इतना अवश्य प्रतीत होता है कि पंजाबी का विकास उस भाषा से हो सकता है। यदि पंजाबी के आज के स्वरूप को देखा जाये तो सन्देश रासक को पंजाबी भाषा की रचना नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि प्रिंसिपल तेजासिंह आदि विद्वान् पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ १२वीं शती से ही मानकर १२वीं से १५वीं शती के अन्त तक पूर्व नानक युग की संज्ञा देते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जब तक नवीन खोजों के आधार पर सिद्धों तथा नाथों का साहित्य प्रामाणिक रूप में उपलब्ध न हो, तब तक पूर्व नानक युग का प्रारम्भ १२वीं शताब्दी से ही मानना उचित है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—भारतवर्ष में हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये थे। ये राजा लोग प्रायः छोटी-छोटी बातों पर आपस में लड़ा करते थे। प्रायः राजकुमारियों की सुन्दरता भी युद्ध का कारण बन जाया करती थी। युद्ध के बिना विवाह सम्पन्न नहीं होते थे। परिणामस्वरूप राज्य दिन पर दिन कमजोर होते जाते थे। दूसरी ओर उत्तर-पश्चिमी सीमा से भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे। सन् ७१० में मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया तथा वहाँ अधिकार कर लिया। सिन्ध पर अरब राज्य स्थापित हो गया। अरब राज्य तो लगभग पचास वर्ष के पश्चात् समाप्त हो गया, परन्तु पंजाब में कुछ मुसलमान बस गये थे। इन्हीं के साथ सूफी भी आये थे। इसके पश्चात् फिर १०वीं शती के अन्त में मुसलमानों

के आक्रमण प्रारम्भ हो गये। महमूद गजनवी के हमलों ने सारे उत्तरी भारत को हिला दिया। महमूद गजनवी के आक्रमण विशेष रूप से पंजाब पर हुए। सन् १०३० तक तो सारा पंजाब ही गजनी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। १२वीं सदी में फिर मुहम्मद गोरी के आक्रमण भारत पर हुए तथा सदा के लिये ही मुस्लिम राज्य भारत में जम गया।

उत्तर-पश्चिम से होने वाले सभी आक्रमणों का सामना पंजाबवासियों को ही करना पड़ता था। सब प्रकार से यह राजनीतिक अशान्ति का ही युग था। पंजाबियों के परास्त होने पर गुलाम वंश का राज्य दिल्ली पंजाब आदि पर स्थापित हो गया। राजनीतिक दृष्टि से भारतवासी परतन्त्र हो गये।

धार्मिक परिस्थितियाँ—भारत के परतन्त्र होने से पूर्व ही बौद्ध मत में विकार आ चुका था। नवीं सदी के आसपास जगद्गुरु शंकराचार्य तथा बाद में कुमारिल भट्ट ने उनसे जमकर लोहा लिया तथा सब प्रकार से भारत से इसकी जड़ें उखाड़ दी थी। परन्तु अपने परिवर्तित रूप महायान तथा वज्रयान के रूप में यह धर्म अब भी विद्यमान था तथा जनता में वासनात्मक दृष्टिकोण का प्रचार कर रहा था। इन सिद्धों का नैतिक दृष्टि से पतन हो चुका था। गुह्य साधना के नाम पर वे अपनी वासना की सन्तुष्टि ही किया करते थे। इन्हीं सिद्धों के एक रूप में शैव मत का मिश्रण हुआ तथा नाथों का जन्म हुआ। ये नाथ योगी आचरण-सम्बन्धी नियमों का पालन बड़ी कठोरता से करते थे। ये लोग अपनी अलौकिक सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर जनता को अपनी ओर आकर्षित किया करते थे। ये लोग वर्णभेद

की उपेक्षा करते थे। जनता में—विशेष रूप से पंजाबवासियों में, क्योंकि उनका प्रचार केन्द्र पंजाब ही था—गृहस्थ जीवन के प्रति विरक्ति का भाव बढ़ता जा रहा था। लोग नास्तिक होते जा रहे थे। इनका प्रभाव उच्च वर्ण की जनता पर कम तथा निम्न वर्ण की जनता पर अधिक था। संसार को माया का बन्धन मानकर किसी अलौकिक सिद्धि की प्राप्ति में लोग वनों में भटका करते थे। वे भक्ति से विमुख होते जा रहे थे। यही कारण है कि बाद में तुलसीदास को इन नाथों से लोहा लेना पड़ा था :—

१. गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।

२. अलखहिं अलखहिं का लखै, राम नाम जप नीच।

दूसरी ओर उच्च वर्ण की जनता में बाह्य कर्म-काण्ड इतना ज़ोर पकड़ गया था कि उसमें सार तत्त्व तो नाम मात्र को ही था, और मिथ्या आडम्बर बहुत होता था। धर्म के नाम पर दिखावा बढ़ता जा रहा था।

सामाजिक परिस्थितियाँ—पूर्व नानक युग का सामाजिक ढांचा भी विशृंखल था। वर्ण-व्यवस्था के कारण केवल क्षत्रिय ही देश-रक्षा का भार अपने कन्धों पर समझते थे। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि क्षत्रियों की जीविका का एकमात्र साधन युद्ध-व्यवसाय ही था। समाज में बाह्याडम्बर की प्रधानता के कारण छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव भी बढ़ता जा रहा था। स्त्री का सम्मान घटता जा रहा था। नाथों के प्रचार के परिणामस्वरूप नारी वर्ग को ही नर के पतन का कारण समझा जाने लगा था। कृषक, कम्मी तथा अन्य श्रमिक वर्ग को इतना धन उपलब्ध नहीं था कि वह विलास कर सकें। उच्च वर्ग या धनिक वर्ग विलासी

था। राजा, सामन्त, श्रेष्ठी, पुरोहित, महन्त आदि समाज का ऐसा वर्ग था, जो प्रचुर मात्रा में धन का स्वामी था।

वीरों के तो दो ही कार्य थे--शान्ति के समय विलास तथा समय पड़ने पर युद्ध करना। समाज के क्षत्रिय समझे जाने वाले वर्ग में उत्साह की भावना व्याप्त रहती थी। युद्ध में मर-मिटना तो सामान्य बात थी। मान-सम्मान के घेरे अत्यन्त छोटे हो गये थे। कन्या का हरण करके उससे विवाह करना अत्यन्त गौरव की बात समझी जाती थी। कन्या पक्ष इसे अपना अपमान समझता था। परिणामस्वरूप घोर युद्ध होता था। इस प्रकार शक्ति का व्यर्थ में ही क्षय होता जा रहा था।

साहित्यिक परिस्थितियाँ--पूर्व नानक युग की युगीन परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की थी कि जिन्हें पंजाबी साहित्य के लिये विशेष प्रेरणादायक नही कहा जा सकता। देश का विद्वान् वर्ग अपभ्रंश या अपभ्रंशाभास हिन्दी में साहित्य रचता था। दिल्ली, कन्नौज आदि राज्यों में पण्डितों, साहित्यकारों आदि के द्वारा प्रयुक्त भाषा ही आदर्श समझी जाती थी। हाँ, पंजाब की सामान्य जनता में अवश्य पंजाबी भाषा में साहित्य रचा गया। सामान्य जनता का साहित्य प्रायः कण्ठ-परम्परा मे ही रहता था, परिणामस्वरूप उसका स्वरूप, भाषा तथा आकार परिवर्तित होता रहता था, और आज उसका थोड़ा-बहुत आकार--जो हमें प्राप्त हो सका है--किसी भी भांति उस युग का स्वीकार नही किया जा सकता। हाँ, उस समय की कुछ बातें अवश्य उपलब्ध होती हैं, जो समाज मे व्याप्त उत्साह का परिणाम कही जा सकती हैं। परन्तु उनमे भी कितना परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हुआ

है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

जन-सामान्य के इस साहित्य के अतिरिक्त मुसलमान सूफियों तथा नाथों व सिद्धों द्वारा रचा गया साहित्य भी उपलब्ध होता है, जो मूलतः धर्म या सम्प्रदाय प्रचार के दृष्टि-कोण से लिखा गया था। इस साहित्य में से नाथों तथा सिद्धों का साहित्य भी जन-सामान्य में प्रचलित रहने के कारण कितना परिवर्तित तथा परिवर्द्धित हुआ, यह कहना कठिन है; परन्तु इतना निश्चित है कि भाषा की दृष्टि से उसे इस युग का स्वीकार नहीं किया जा सकता।

शेष सूफी काव्य बचता है। फरीद शकर गंज आदि ने उच्चकोटि का साहित्य-निर्माण किया। सूफियों के सामने एकमात्र ध्येय अपने मत का प्रचार करना था। इसी कार्य के लिये वे भारत आये थे। मुसलमान शासक जो कार्य अपनी तलवार से नहीं कर सके, वह कार्य इन सूफियों ने अपनी सरस तथा प्रेम से पूर्ण कथाओं के माध्यम से करना प्रारम्भ किया। इनकी कविता में रहस्यवाद की भी झलक प्रायः होती थी। फिर भी सूफी काव्य ही एकमात्र ऐसा काव्य है, जिससे पंजाबी भाषा के साहित्य का स्वरूप प्रतीत होने लगा था।

पूर्व नानक युग का साहित्य

पूर्व नानक युग के साहित्य को हम मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं —

१. आध्यात्मिक साहित्य।
२. सांसारिकता से पूर्ण साहित्य।

यूं तो कुछ पंजाबी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने लोक गीतों को भी उसी काल के साहित्य से सम्बन्धित मानकर

एक तीसरा वर्ग लोक काव्य के नाम से बनाया है। परन्तु जै
कि पूर्व ही विवेचित किया जा चुका है कि लोक गीतों
प्रामाणिकता सन्दिग्ध है, अतः उन्हें पृथक् ही रखा जा
यही अधिक उचित होगा।

आध्यात्मिक साहित्य में भी तीन प्रकार की कवित
सम्मिलित हैं :—

१. नाथ जोगियों का साहित्य—डॉ० मोहनसिंह
पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ ९वीं शताब्दी से मानते हुए ना
जोगियों के साहित्य को भी पंजाबी भाषा में स्वीकार कि
है। उनके मतानुसार इनके द्वारा साहित्य-रचना लगभग १५
सदी तक होती रही। कविता का विषय अपनी आध्यात्मि
मान्यताओं का प्रचार करना तथा संसार को माया का च
मानकर त्याग का उपदेश देना है। भाषा इनकी सधुक्कड़ी
जो ९वीं शताब्दी की प्राचीन रचना के अनुकूल नहीं कही
सकती। इन जोगियों की संख्या काफी बड़ी थी, परन्तु वा
केवल तीन की ही प्राप्त होती है :—

१. गोरखनाथ।
२. चरपटनाथ।
३. रतननाथ।

कुछ पंजाबी के विद्वान् नाथ साहित्य की भाषा को पंजा
नहीं मानते। हिन्दी के अनेक विद्वान् इनकी भाषा को हि
ही मानते हैं।

२. सूफी कविता—सूफी कविता पंजाबी साहित्य
अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अपने धार्मिक सिद्धान्तों
प्रचार के लिए सूफी कवियों ने भारतीय कथाओं को ग्र
करके भारतीय भाषाओं में भारतीयों के सम्मुख रखा। सू

काव्य का शरीर भले ही भारतीय हो, परन्तु उसकी आत्मा तथा शरीर के प्रसाधन की सामग्री अभारतीय ही थी। शैली, अलंकार, अप्रस्तुत विधान आदि अभारतीय हैं। गुरु को इनकी कविता में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। पहले सांसारिक प्रेम करना तथा पीछे उसे आध्यात्मिक प्रेम में बदल लेना, इनके पंथ की विशेषता है। प्रेम को इनके काव्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है। संयोग तथा वियोग दोनों ही प्रकार के चित्र इनके काव्य में उपलब्ध हैं। सूफियों की शायद ही कोई ऐसी रचना हो, जिसमें प्रेम-कथा को न अपनाया गया हो। इन सूफी कवियों में सबसे अधिक सुन्दर साहित्य बाबा फरीद का माना जाता है।

३. भक्ति रस का साहित्य—भारत में मुगल आक्रमणों के शान्त होते-होते दक्षिण से एक भक्ति की लहर उठी थी, जिसने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया था। इस लहर के साथ-साथ अनेक प्रान्तों में भी विशिष्ट ख्याति प्राप्त सन्तों ने जन्म लिया था। इन सन्तों ने यूँ तो जन-भाषा तथा सधुक्कड़ी भाषा में साहित्य-सर्जना की है, फिर भी पंजाबी में भी इनकी कुछ वाणियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। नामदेव, कबीर आदि कुछ ऐसे ही सन्त थे। इनकी कविता में या तो जीव को उसके मिथ्याकर्मों के प्रति सचेत किया गया है या अपने प्रभु के ध्यान में मस्त होकर हृदय के आनन्द को अभिव्यक्त किया गया है। आध्यात्मिक चेतना से अनुप्राणित इन सन्तों का साहित्य वास्तव में बहुत सुन्दर बन पड़ा है। हृदय की भावात्मकता अपने सहज प्रवाह में छलकी है। भावपक्ष जितना सुन्दर बन पड़ा है, उतना कलापक्ष इनका समृद्ध नहीं है।

यह तो हुई आध्यात्मिकता से पूर्ण कविता। सांसारिक

कविता को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :--

१. वीर रस का काव्य--समाज के युद्ध व्यवसायियों में जो उत्साह व्याप्त रहता था, उसी को जगाने तथा बढ़ावा देने के लिए वीर रस पूर्ण साहित्य की सर्जना भी इस काल में पर्याप्त मात्रा में हुई। युद्ध का वर्णन, शत्रु का ललकारना, योद्धा का उत्साह में भरकर शस्त्र संचालन तथा विजय पताका लिये लौटते हुए वीरों के उल्लास से पूर्ण इस काव्य को पंजाबी साहित्य में वार काव्य की संज्ञा दी गई है।

इस काल की प्रसिद्ध वारों में (१) राय कमाल मौज दी वार, (२) टुंडे असराजे दी वार, (३) सकन्दर इब्राहीम दी वार, (४) लला बहिलीमां दी वार, (५) हसमें नहिमें दी वार तथा (६) भूसे दी वार का नाम लिया जा सकता है।

इन काव्यों में जहां युद्ध के वर्णन में वीर रस होता है, वहां युद्ध भूमि की भयकरता में भयानक रस का चित्रण भी किया गया है। रौद्र, बीभत्स्य आदि सहायक रसों के रूप में अभिव्यंजित हुए हैं। इस वार साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके ही आधुनिक काल तक सैंकड़ों वारें लिखी गई हैं।

२. हास्य रस का काव्य--पंजाबवासियों का जीवन चाहे राजनीतिक दृष्टिकोण से अशान्त रहा था, परन्तु फिर भी दैनिक जीवन में सरलता से उत्पन्न हास्य रस भी इस समय के साहित्य में उपलब्ध होता है। चरपट की वाणी में यह हास्य रस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। पहेलियों, मुकरियों आदि की गणना इसी श्रेणी में की जा सकती है। इसी से प्रेरणा प्राप्त करके सुथरा, जल्लण जाट, वजीद, सुरता आदि अनेक हास्य रस के कवि पंजाबी साहित्य को समय-समय पर अपनी हास्य रस की रचनाओं से समृद्ध करते रहे हैं।

बाबा फरीद

जीवन—बाबा फरीद का नाम फरीद शकर गंज था। शकर गंज आपके नाम के साथ बाद में जोड़ा गया था। आपका जन्म सन् ११७३ ई० में खेतवाल गाँव में हुआ था जो कि मुलतान जिले में है। आपके पिता का नाम ख्वाजा जमालदीन सुलेमान था। आपकी माता का नाम कुरेशन खातून था, जो कि ईरान के किसी अमीर की पुत्री थीं। आपके बाबा ईरान की राजनीतिक हलचल के समय भारत में आये थे। बाबा फरीद का पालन-पोषण काबुल में हुआ। बाद में आप सुलतान शहाबुद्दीन गौरी के समय में पंजाब में आये थे।

कहा जाता है कि आपकी माता बहुत ही सन्त स्वभाव की थी, वे सदा आध्यात्मिक विचारों से ओत-प्रोत रहती थीं। उन्होंने ही बाबा फरीद का ध्यान आध्यात्मिक ज्ञान की ओर आकर्षित किया था। उन्होंने आपको सर्वप्रथम गोपीचन्द तथा मैनावती की कथाएँ सुनाई थी। आपकी फारसी की कविताओं में इस बात की ओर संकेत किया गया है।

आपका विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध गुलाम वंश के शासक गयासुद्दीन बलबन की पुत्री से हुआ था। आप दिल्ली के कुतुबुद्दीन बख्तियार के शिष्य बने थे। बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही पाकपट्टन में आपकी गद्दी चली आ रही है। इस गद्दी के प्रवर्त्तक फरीद दीन मसऊद थे। आपने ईश्वर के प्रति दाम्पत्य भाव का प्रेम अपनाया था। पंजाबी में इस प्रकार के भाव की कविता के प्रथम निर्माता आप ही माने जाते हैं।

आप अपने आचरण तथा धर्म-सम्बन्धी नियमों का कट्टर-पालन करते थे। आपके जीवन में सरलता और सादगी

सर्वत्र विद्यमान रहती थी। कहा जाता है कि आप एक उच्च-कोटि के सन्त थे। आपने अत्यन्त कठिन साधना की थी। कहा जाता है कि आप कई वर्ष भूखे भी रहे थे। इसके अतिरिक्त एक कुएँ में उलटे भी लटके रहे थे। आप प्रायः अपने पेट पर एक लकड़ी की रोटी बाँधे रहते थे। मुलतान में आपके नाम से कई चमत्कार प्रसिद्ध है।

आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं, परन्तु अधिकतर विद्वान् इनकी मृत्यु सन् १२६६ ई० में मानते हैं। इस प्रकार आपकी आयु ६३ वर्ष की ठहरती है।

रचना—आपकी रचना शब्द तथा दोहों के रूप में है। इनमें भी आपने दोहे ही अधिक लिखे हैं। आपकी रचना दो प्रकार की कही जा सकती है। प्रथम तो वह जिसमें आप अज्ञानी जीव को प्रबोधते हैं या नीति, आचार, व्यवहार सम्बन्धी उपदेश देते हैं :—

फरीदा जे तैं मारन मुकियाँ, तिनाँ न मारे घुम्म।
आपनड़े घर जाइये, पैर तिन्हाँ दे चुम्मि॥

दूसरे प्रकार के साहित्य में आपके ईश्वरी प्रेम की चेतना से अनुप्राणित कविताएँ आती हैं :—

जोवन जांदे न डरों जे शह प्रीत न जाइ।
फरीदा जोवन प्रीत बिन, सुक गये कुमलाइ॥

दोनों ही प्रकार का साहित्य सुन्दर बन पड़ा है। आपका मूल उद्देश्य इस्लाम का प्रचार था। कहा जाता है कि इन्होंने प्रचार द्वारा काफी संख्या में हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ये सूफी भारतीय कथाओं को भारतीय भाषा में भारतीय ढंग से, परन्तु अपने धर्म के चारों ओर लपेट कर प्रस्तुत करते थे। परिणामस्वरूप

पंजाब की अशिक्षित जनता इनकी कथा की सरसता में डूबकर धीरे-धीरे इस्लाम धर्म से प्रभावित होती जाती थी। फरीद की कविता भी कुछ इसी प्रकार की थी। सूफी होने के नाते प्रेम को इनकी कविता में मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। प्रेम का आकर्षण भी कुछ ऐसा होता है कि मानव इसकी ओर शीघ्र आकर्षित होता है। बाबा फरीद की कविता में तो स्वाभाविक प्रेम का स्वरूप चित्रित है। प्रेम में हृदय के सरल उद्गार अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गये हैं :—

> कागा करंग ढढोलिया, सगला खाइया मास।
> ऐ दुइ नैना मत छुहउ, पिर देखण की आस॥

प्रेम दाम्पत्य भाव पर आश्रित है। आपने जीवन में सरलता, स्वच्छता, पवित्रता, व्यक्तिगत साधना पर बल दिया है। जीवन के अनुभव तो आपने स्थान-स्थान पर व्यक्त किये हैं। यही कारण है कि नित्य-प्रति के जीवन से सम्बन्धित अनेक दोहे तो लोगों की कण्ठ-परम्परा में ही निवास करते हैं। कविता में जीवन के अनुभव के साथ-साथ भाव का भी सहज उच्छलन प्राप्त होना है :—

> फरीदा गलिएँ चिकड़ दूरी घर नाला पिआरे नेहु।
> चलां तां भिजै कम्बली रहां तां टूटे नेहु॥

इनकी कविता में सूफी रहस्यवाद की भी स्थान-स्थान पर झलक दिखाई देती है। कवि ने अपनी बात समझाने के लिये या तो सामान्य जीवन की वस्तुओं से उपमा दी है या प्राकृतिक जीवन से।

भाषा आपकी अत्यन्त सरल तथा मोटी है। लहँदी पंजाबी के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। उर्दू-फारसी के शब्दों की भी अच्छी संख्या इनकी कविता में उपलब्ध होती है। भाषा

में समाहार-शक्ति भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है।

भाषा का प्रयोग भावों के अनुकूल ही हुआ है। भाषा में भावों के भार को वहन करने की क्षमता है। स्वाभाविकता के कारण ही कहीं-कहीं छन्द के बन्धन टूट गये हैं। आपके दोहे भी पिंगल के नियमों पर पूरे-पूरे नहीं उतरते।

अलंकारों का प्रयोग भी स्वाभाविकता लिये हुए है। स्वाभाविक रूप से ही अलकार का प्रयोग किया गया है। भरती के अलकारो का सर्वथा अभाव है। काव्यलिंग अलकार का एक उदाहरण देखिये :—

फरीदा खाक न निंदिये, खाकू जेड ना कोइ।
जीवदियाँ पैरां तले, मोइयाँ उपर होइ॥

अनेक आलोचकों के विचार से फरीद निराशावादी कवि हैं; परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं प्रतीत होता। यह ठीक है कि आपकी कविता में जीवन की असारता के चित्र काफी मात्रा में हैं; परन्तु इन चित्रों से कवि का उद्देश्य जीवन में नम्रता, क्षमा, दया, मीठा बोलना आदि गुणों की अवस्थिति से है। जहाँ वे ईश्वरीय प्रेम की मस्ती में डूब कर कविता करते हैं, वहाँ जीवन के प्रति रागात्मक भाव भी मिलता है।

बाबा फरीद पंजाबी साहित्य गगन के प्राचीनतम उज्ज्वल नक्षत्र कहे जा सकते हैं, जो अपनी आभा में आज भी उसी तरह से चमक रहे हैं, जैसे आज से ७०० वर्ष पहले चमकते रहे होंगे। इस नक्षत्र ने अपने उत्तर युग में न जाने कितने साहित्यकारों का पथ-प्रदर्शन किया होगा। आपके साहित्य को देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि आपके आस-पास निश्चय हो पंजाबी साहित्य की अच्छी परम्परा रही होगी, जिससे विकसित होती हुई भाषा को आपके

काव्य में स्थान मिला, अन्यथा एकदम से किसी भी कवि के काव्य में भाषा में इतना माधुर्य तथा लावण्य उत्पन्न होना कठिन ही प्रतीत होता है। काव्य की सुन्दरता के कारण ही पंजाबी साहित्य में आपका एक विशिष्ट स्थान बन गया है। यही कारण है कि पंजाबी विद्वान् आपको शेख फरीद न कह कर प्यार से बाबा फरीद कहते हैं।

गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध वाणी—गुरु ग्रन्थ साहिब में बाबा फरीद के नाम से १३२ दोहे उपलब्ध होते हैं। इन सभी दोहों को अनेक विद्वान् आपके द्वारा सृजित नहीं मानते। इन विद्वानों में मैकालिफ, भाई काहनसिंह, डॉ० लाजवन्ती तथा बाबा बुधसिंह का नाम लिया जा सकता है। इन विद्वानों के मत से ११२ दोहे तो बाबा फरीद के ही हैं और बाकी २० दोहे १२वें फरीद शेख ब्रह्म की रचनाएँ हैं। इन विद्वानों का प्रमुख तर्क यह है कि गुरु नानक ने शेख ब्रह्म से फरीद की वाणी ली थी। शेख ब्रह्म ने अपने गुरु की वाणी के साथ अपनी वाणी भी गुरु नानक को भेंट की थी। नानकदेव ने सारी वाणी फरीद की समझ ली। इनके मत का आधार यह है कि शेख ब्रह्म के द्वारा रचित २० दोहों की भाषा अधिक परिष्कृत तथा आधुनिक पंजाबी के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त फरीद सानी का मिलाप भी गुरु नानकदेव के साथ हुआ था। डॉ० लाजवन्ती ने अपने मत की पुष्टि में एक दोहा भी उद्धृत किया है :—

> शेख हियाती जम ना, कोई थिर रहिया।
> जिस आसन हम बैठे, केती बैठ गिया॥

इन विद्वानों के द्वारा दिये गये तर्कों में पर्याप्त सार है, परन्तु इनके आधार पर २० दोहों को शेख ब्रह्म की रचना

स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण कुछ इस प्रकार दिये जा सकते हैं :—

१. गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रकाशन करते हुए गुरु अर्जनदेव जी ने पूरी सावधानी से काम लिया था। यदि २० दोहे शेख ब्रह्म के होते तो गुरु अर्जनदेव जी स्पष्ट रूप से शेख ब्रह्म का नाम लिखते।

२. ब्रह्म फरीद से लगभग १०० वर्ष पूर्व फारसी के विद्वान् हज़रत किरमानी ने अपनी पुस्तक 'सीरोयुल औलिया' में बाबा फरीद की कविता उदाहरण के रूप में दी है। यह कविता भाषा तथा भावों की दृष्टि से उच्च कोटि की रचना है। अतः सिद्ध होता है कि बाबा फरीद के समय में ही पंजाबी परिष्कृत तथा मार्दव पूर्ण भाषा बन चुकी थी।

३. बाबा फरीद के अतिरिक्त कोई भी फरीद इस परम्परा में ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ, जिसे हम बाबा फरीद के समान (कविता की दृष्टि से) मान सकें। बाबा फरीद की रचना से जीवन का जो गहन अध्ययन तथा भाषा, भाव आदि की समृद्धता दृष्टिगोचर होती है, वह अन्य किसी फरीद की रचना से नहीं होती। इस दृष्टि से गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध रचना बाबा फरीद की ही प्रतीत होती है।

४. डॉ० लाजवन्ती ने जो दोहा अपने समर्थन में उद्धृत किया है, उसके अनेक अर्थ हो सकते हैं। उदाहरण के लिये यह भी तो हो सकता है कि 'आज अपने आसन पर, अपने आचार-सम्बन्धी नियमों पर से सभी डिग चुके हैं।' बात है भी ठीक। पहले रोज़ा, नमाज़ तथा दारा का पालन कट्टरता से होता था; परन्तु बाद के काल में यह कट्टरता नहीं रह पायी थी।

५. फरीद ने जितने भी दोहे लिखे हैं, उनमें अपने नाम

की छाप भी लगाई है। यह छाप गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध वाणी में भी मिलती है। फिर सारी ही वाणी फरीद के निजी जीवन के अनुभवों से भरी हुई है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुरु ग्रन्थ साहिब में संग्रहीत वाणी बाबा फरीद की ही है। इस भ्रम का सबसे बड़ा कारण 'पुरातन जनम साखी' कही जा सकती है। 'पुरातन जनम साखी' के अनुसार गुरु नानक की तीसरी उदासी के समय शेख ब्रह्म ने यह वाणी गुरु नानक को भेंट की थी। इससे लोगों ने यह समझ लिया कि शेख ब्रह्म ने अपनी भी वाणी उसमें मिला दी होगी। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है; हो सकता है कि उसने अपनी वाणी भेंट न की हो।

नाथ कवि

गोरखनाथ—गोरखनाथ का नाम नाथ पंथ में बड़े आदर से लिया जाता है। कहा जाता है कि आपके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ किसी त्रिया देश में फँस गये थे, जहाँ से आपके द्वारा ही उनका उद्धार हुआ था। आपने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी। आचरण सम्बन्धी नियमों का पालन आप बड़ी कठोरता से करते थे। मुसलमान धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को भी आपने कम किया था। आपके चमत्कारों तथा तपस्या के प्रभावस्वरूप नाथ सम्प्रदाय की काफी उन्नति हुई थी। आपने पद तथा दोहे दोनों ही लिखे थे। सामान्य जनता की भाषा को ही आपने अपनाया है। दूसरी भाषा के शब्द तथा व्याकरण के नियम भी आपकी वाणी में मिल जाते हैं। यही कारण है कि अनेक विद्वान् इनकी भाषा को पंजाबी न मान कर सधुक्कड़ी मानते

। आपकी वाणी का कबीर आदि पर बहुत प्रभाव पड़ा। अनेक भाव तो कबीर ने ज्यों के त्यों ले लिये है। आपकी रचना के एक-दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) डाल नहीं फूल, जाके बिरख ना बेल।
सिख ना साखा, जाके गुरु नहीं चेल॥
(२) उपजे ना बिनसे, आवे ना जाइ।
जग में रह, तिस बाप ना माइ॥

चरपटनाथ—चरपटनाथ के लिये कहा जाता है कि आप चम्बा रियासत के राजगुरु थे। आप कुरीतियों का खण्डन खरी-खरी उक्तियों से करते थे। आपके फटकारपूर्ण ढग को कबीर आदि निर्गुण सन्तों ने अपनाया था। आपकी वाणी काफी मात्रा में मिलती है। सामान्य जनता की भाषा का ही अपने प्रयोग किया है। दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) इह संसार कंटिमों की बाड़ी, निरख निरख पग धरना।
चरपट कहे सुणों रे सिद्धो, हठ कर तप नहीं करना॥
(२) लम्बी खिथा भोल भभोली, कन्न पड़ास मुख तंबोली।
दिने भिखिआ राती रस भोग, चरपट कहे गवाया जोग॥

पूरननाथ—पेशावर में पूरननाथ का कुआँ प्रसिद्ध है। पट्टी (जिला अमृतसर) के एक जैन मन्दिर में नाथ वाणी का से एक हस्तलिखित प्रति मिलती है। यह वाणी पूरननाथ की मानी जाती है।

रतननाथ—आपके सम्बन्ध में अल्लादास द्वारा रची एक पुस्तक गुरमुखी लिपि में लन्दन के अजायबघर में सुरक्षित है। इसका रचना काल सन् १६०० ई० है। पुस्तक का नाम 'रतन गियान' है। इसमें रतननाथ का हाल, उनकी शिक्षा तथा उनकी यात्रा आदि का विवरण है। कहा जाता

है कि रतननाथ ने खुरासान, जलालाबाद, गज़नी आदि देशों में घूम-घूमकर योग का प्रचार किया था। आपकी रचनाओं में 'काफर बोध' तथा 'अवल सलूक' मिलती हैं।

इन नाथों के अतिरिक्त नाथ सम्प्रदाय की तीन पुस्तकें पंजाबी में और उपलब्ध होती हैं :—

१. उदास गोपीचन्द।
२. गाथा।
३. गोरख शब्द।

अध्याय ५

नानक युग

पंजाबी साहित्य के काल-विभाजन में हमने नानक युग की सीमाएँ १६वीं शती से १७वीं शती तक स्वीकार की हैं। यह युग पंजाबी साहित्य में स्वर्ण-युग माना जाता है। इसके स्वरूप को समझने के लिये इसकी राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों को समझ लेना आवश्यक होगा।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—राजनीतिक दृष्टि से पंजाब ही क्या लगभग सारा भारतवर्ष मुगलों के आधीन हो चुका था। राजस्थान में अवश्य कुछ राजपूत राज्य स्वतन्त्रता बनाये हुए थे। मुसलमानों में आपसी संघर्ष होते रहते थे। कभी पठान शेरशाह शक्ति प्राप्त कर लेता था तो कभी मुगल शासक हुमायूँ। सन् १६२६ ई० में जब अकबर का राज्य स्थापित हो गया तो ये संघर्ष भी समाप्त हो गये। बाह्य आक्रमणों का भय न रहा। मुगलों की राज्य-व्यवस्था अच्छी होने के कारण देश में शान्ति रहती थी। इन मुसलमान शासकों ने भारतीय राजाओं की प्रभुसत्ता को बनाये रखा था। राज्य के आन्तरिक मामलों में वे हस्तक्षेप नहीं करते थे। केवल बाह्य मामलों में ही राजाओं को मुसलमान सम्राट् से आज्ञा लेनी पड़ती थी। अब वे चाहे जितने युद्ध नहीं कर सकते थे।

धार्मिक परिस्थितियाँ—धार्मिक दृष्टिकोण से भारतवा

की दशा विगड़ी हुई थी। मुस्लिम जाति तलवार के बल से समस्त भारत को ही मुसलमान बनाना चाहती थी। उनकी दृष्टि में खुदा ने केवल एक मजहब बनाया है, जो कि इस्लाम है। इस्लाम पर ईमान न लाने वाला काफिर है तथा काफिर को मारने वाला खुदा का विशेष प्यारा बन जाता है। दूसरी ओर हिन्दुओं की धार्मिक भावना संकुचित होती जा रही थी। मुसलमानों के हाथ का छुआ पानी पीने मात्र से हिन्दू धर्म समाप्त हो जाता था। ऐसा व्यक्ति जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। परिणामस्वरूप उसे इस्लाम धर्म अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था, क्योंकि उसमें इस प्रकार की संकुचित भावना नही थी। हिन्दुओं मे यह छुआ-छूत की भावना बहुत बढ़ चुकी थी। अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियाँ हिन्दू समाज में घृणा तथा उपेक्षा की पात्र थीं। फलस्वरूप वे भी धीरे-धीरे इस्लाम धर्म को अंगीकार करती जा रही थीं।

तीसरी ओर मुसलमान सूफी कवि अपने प्रेम के रंगीन तथा चटकीले चित्रों से भरपूर प्रेम-कथाएँ हिन्दू जनता के सन्मुख उपस्थित कर रहे थे। इन प्रेम-गाथाओं में अशिक्षित ग्रामीण जनता ऐसी भूली कि उसे सर्वत्र प्रेम का ही प्रकाश दिखाई देने लगा। उन्हें अपने धर्म का उदात्त स्वरूप ही भूल गया। हिन्दुओं में—विशेष रूप से उच्च वर्ग के व्यक्तियों में—धर्म के नाम पर बहुत से मिथ्याडम्बर पनप रहे थे। फल यह हुआ कि जो कार्य धर्मान्ध शासकों की तलवार न करा सकी, उसे इन सूफी फकीरों ने कर दिखाया और हजारों की संख्या में गाँव के गाँव मुसलमान बनने लगे।

लगभग १२वीं शती में दक्षिण में रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद के उत्तर में अद्वैतवाद की स्थापना की थी। लगभग

१३वीं शती में दक्षिण में ही अलवार भक्त हो चुके थे, जिनमें अन्दाला नाम की एक भक्तिन मीरा के समान ही ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। इसके बाद तो लगभग सारे देश में ही भक्ति की बेल फैल गई तथा उसमें ऐसे सुस्वादु तथा मनोहर फल लगने लगे कि सारा साहित्य उसकी मिठास से आप्लावित हो उठा। महाराष्ट्र में नामदेव तथा सन्त तुकाराम, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, काशी में रामानन्द, कबीर तथा देश के अन्य भागों में मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि अनेक सन्त हुए। पंजाब में भी गुरु नानकदेव जी का आविर्भाव हुआ। इन सभी आचार्यों ने जहाँ जनता को ईश्वर के सच्चे स्वरूप का साक्षात् कराया वहाँ प्राणी मात्र में एक ही चेतन सत्ता की अवस्थिति बताकर सभी भेदभाव समाप्त करने का भी उपदेश दिया। प्राणी मात्र की समानता का आदर्श इन आचार्यों ने सबके सम्मुख रखा। गुरु नानक ने तो सभी में समानता लाने के लिये बाँट कर खाने का उपदेश दिया।

सामाजिक परिस्थितियाँ—हिन्दू समाज में सामाजिक स्तर पर बहुत गिरावट आ चुकी थी। ऊँच-नीच, छुआ-छूत इत्यादि का अत्यधिक प्रचार था। सवर्ण समझे जाने वाले हिन्दू निम्न वर्ण के व्यक्तियों के स्पर्श तक से बचते थे। यदि कभी भूल से भी दोनों एक-दूसरे को छू जाते थे तो सवर्ण व्यक्ति को स्नान करना पड़ता था। पर्दे की प्रथा भी बढ़ चली थी। विवाह छोटी आयु में ही कर दिये जाते थे। लोग कुरीतियों में फँसे हुए थे। स्त्री जाति की दशा तो और भी बिगड़ी हुई थी। नारी को भोग की [illegible] समझा जाने लगा था। पुरुषों का भी नैतिक [illegible] था। कबीर आदि ने तो पुरुषों के [illegible] के लिये नारी की ही बुराई

करनी प्रारम्भ कर दी थी। सहजयान तथा वज्रयान आदि के बिगड़े हुए रूप में वाम मार्ग का प्रचार भी होने लगा था। ये लोग शक्ति की पूजा करते थे तथा नारी का भोग उसका प्रसाद समझ कर करते थे। नाथों के प्रचार से संसार के प्रति विरक्ति की भावना पहले ही से विकसित होती चली आ रही थी। रही-सही कमी निर्गुणिये सन्त कबीर आदि ने पूरी कर दी। फल यह हुआ कि जिस व्यक्ति को जीवन में ज़रा भी असफलता मिली या परिवार में कलह इत्यादि हुआ तो वह झट सिर मुंडवा कर सन्यासी हो जाता था। तुलसीदास जी ने समाज की इसी अवस्था की ओर संकेत कलि महिमा नामक प्रसंग में किया है :—

नारी मुई घर सम्पत्ति नासी,
मूंड मुड़ाय भये सन्यासी।

समाज की इसी दशा को लक्ष्य करके ही गुरु नानकदेव ने स्वय हाथ से कमाकर खाने का उपदेश जनता को दिया था।

साहित्यिक परिस्थितियाँ—मुसलमानों का राज्य होने के कारण तथा राज्य के कार्यों में अरबी-फारसी को अपनाया जाने के कारण देश का पढ़ा-लिखा वर्ग अरबी-फारसी को ही अपनाने लगा था। अरबी-फारसी के ज्ञान के बिना राजकीय कार्यालयों में नौकरी मिलनी सम्भव नहीं थी। फारसी साहित्य के अध्ययन से देश का पढ़ा-लिखा वर्ग उनकी सभ्यता को भी अपनाने लगा था। गुरु नानक ने देश की इसी दशा का चित्रण करते हुए लिखा है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी आज मियाँ जैसे विदेशी शब्दों को अपने नाम के साथ जोड़ते हुए गौरव का अनुभव करते हैं।

देश का पण्डित वर्ग अपनी संस्कृति को मुसलमानों के

प्रभाव से बचाने के लिये संस्कृत भाषा का प्रयोग करता था। पंजाब की जन-भाषा पंजाबी की ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। गुरुओं ने इस भाषा को महत्त्व दिया। उन्होंने इसी का अपने प्रत्येक कार्य के लिये उपयोग किया। सामान्य दिनचर्या से लेकर प्रार्थना तथा साहित्य-रचना के लिये भी इसी को उपयुक्त समझा। गुरुओं से आदर्श ग्रहण करके ही पंजाब-वासियों ने पंजाबी को महत्त्व देना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् तो अनेक प्रकार का साहित्य पंजाबी में रचा जाने लगा।

गुरुओं के अतिरिक्त देश में सूफी फकीरों के रूप में मुसलमानों का एक वर्ग और था, जो पंजाबी में ही साहित्य-रचना करता था। इस वर्ग का प्रमुख उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था। मुसलमान शासक शक्ति से मुसलमान बनाते थे, ये भावों से। उनकी पहुँच शरीर तक ही थी, परन्तु ये मन तक पहुँचते थे। अपने इसी स्वार्थ को सिद्धि के लिये ये फकीर पंजाब के सामान्य जीवन में प्रचलित प्रेमपूर्ण लोक-कथाओं को अपनाते थे तथा उसे प्रेम की पीड़ा से भरकर भारतीय तथा अभारतीय दोनों पद्धतियों के मिश्रित रूप से सजा कर इस प्रकार से अशिक्षित वर्ग के सम्मुख उपस्थित करते थे कि वे प्रेम की चाशनी में पगी इस्लाम धर्म की कड़वी निबौली को भी स्वेच्छापूर्वक उदरस्थ कर लेते थे। सूफियों की प्रेम-गाथाओं के अतिरिक्त इस युग में लौकिक प्रेम-गाथाएँ, वार साहित्य तथा हास्य-रस का साहित्य भी लिखा गया। फारसी साहित्य में लौकिक प्रेम से पूर्ण कथाएँ लिखी गयी हैं। इनके प्रभाव के फलस्वरूप ही पंजाबी साहित्य में भी हीर-राँझा, सस्सी-पुन्नु आदि लिखे गये।

इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण बात गद्य का जन्म है। प्रायः संसार के सभी साहित्यों में पहले कविता का उद्भव होता है, तथा गद्य साहित्य का बाद में। यही बात पंजाबी के साथ भी हुई। गद्य में दो-चार पुस्तकें ही लिखी गयी हैं। यह गद्य उत्तम कोटि का तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु फिर भी इसका अपना महत्त्व है। अन्य भारतीय भाषाओं में से अनेक में तो उस समय गद्य था ही नहीं, तथा हिन्दी आदि जिन भाषाओं में गद्य का जन्म हो चुका था, उनमें भी अधिक सुन्दर नहीं था।

संक्षेप में इस युग को हम इस प्रकार बांट सकते हैं :—

पद्य साहित्य :—(१) गुरुमत का साहित्य।
(२) भक्ति-साहित्य।
(३) सूफी-साहित्य।
(४) किस्सा-काव्य या लौकिक प्रेम-कथाएं।
(५) हास्य-रस का साहित्य।

गद्य साहित्य :—(१) साखी-साहित्य।
(२) अनूदित-साहित्य।
(३) गोष्ट-साहित्य।

गुरुमत का साहित्य तथा कवि

गुरुमत का साहित्य मूल रूप से गुरुओं के द्वारा लिखा गया है। गुरुओं का तथा भाई गुरुपाल का साहित्य श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संग्रहीत है। इसके अतिरिक्त बाबा फरीद, कबीर आदि अनेक सन्त कवियों की वाणी भी इसमें संग्रहीत है। दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी की रचना दशम ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरुमत के साहित्य का मूल विषय तो भक्ति ही कहा जायेगा, परन्तु भक्ति के अतिरिक्त अवतारवाद का खण्डन करके एक ईश्वर की उपासना, हठ से तप करने के स्थान पर प्रेम-भक्ति का उपदेश, प्रकृति में ही ब्रह्म-तत्त्व के दर्शन तथा विश्व के प्रत्येक कार्य में उसी परम सत्ता की शक्ति का आभास पाना आदि अनेक बातों का प्रतिपादन इसमें हुआ है।

गुरुमत के मुख्य रूप से तीन सिद्धान्त कहे जा सकते हैं :—

१. नाम जपना।
२. हाथ से कमा कर खाना।
३ बाँट कर खाना।

इन्हीं तीनों सिद्धान्तों से सारा गुरुमत साहित्य ओत-प्रोत है। गुरुओं ने समाज में जो भी बुराई देखी, मिथ्याडम्बर देखा, उसका खण्डन करके सच्चे मार्ग को जनता के सामने रखा।

साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह साहित्य अत्यन्त उच्च कोटि का बन पड़ा है। लगभग प्रत्येक रस का संचार इस साहित्य में हुआ है। जहाँ भक्ति भावना से प्रेरित होकर

अभिव्यक्ति की है, वहाँ भाव की स्वाभाविकता तथा तीव्रता इतनी अधिक है कि पढ़ते ही चित्त द्रविभूत हो उठता है। प्रेम का प्रकाश सर्वत्र विद्यमान है।

परन्तु इस साहित्य का भाव पक्ष जितना समृद्ध तथा उत्कृष्ट बन गया है, उतना कला पक्ष सुन्दर नहीं बन पाया है। भाषा यद्यपि अत्यन्त सरल तथा भावों के अनुकूल है, परन्तु दूसरी भाषाओं के शब्दों के मेल ने इसे सधुक्कड़ी बना दिया है। फिर भी इस साहित्य में एक विशेष सौन्दर्य है। यह साहित्य मन, आत्मा तथा हृदय तीनों को एक साथ तृप्ति प्रदान करता है।

गुरु नानकदेव

जीवन—गुरु नानक का जन्म सन् १४६९ ई० में तलवंडी (आधुनिक ननकाना साहब) में हुआ था। आपके पिता का नाम कालूचन्द था जो कि वेदी खत्री थे। माता का नाम तृप्ता था। आपकी माता जी अत्यन्त सन्त स्वभाव की थीं। आप पर अपनी माता का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा था। बड़ी बहिन का नाम नानकी था, जिसका आप पर विशेष स्नेह था।

आप बचपन से ही गम्भीर प्रकृति के थे। घर के कार्यों में आपकी अरुचि देखकर कालूचन्द को यही चिन्ता लगी रहती थी कि किसी प्रकार नानकदेव जी को व्यापार तथा घर के कार्यों में निपुण बनाया जाये। सन् १४७५ ई० में आपको गोपाल पण्डित के पास हिन्दी पढ़ने के लिये भेजा गया। सन् १४७८ ई० में आपने पण्डित ब्रजलाल से संस्कृत की शिक्षा लेनी प्रारम्भ की थी। सन् १४८२ ई० में आपने मौलवी कुतुबुद्दीन के पास फारसी का अध्ययन प्रारम्भ किया।

कुछ श्रद्धालुओं का विचार है कि नानकदेव केवल एक-एक दिन ही पढ़ने के लिये तीनों गुरुओं के पास गये, तथा उन्हें अपने आध्यात्मिक ज्ञान से प्रभावित करके वापिस आ गये, क्योंकि तीनों ही गुरुओं ने अपने-आपको उन्हें पढ़ाने में असमर्थ पाया। परन्तु यह उक्ति ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध है। हृदय उसे भले ही स्वीकार कर ले पर बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। तीनों गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने में कई-कई वर्ष का अन्तर मिलता है। ये अलग-अलग तिथियाँ सूचित करती हैं कि उन्होंने इतने दिनों तक प्रत्येक भाषा का अध्ययन किया था। यह ठीक है कि वे प्रतिभाशाली थे। उन्होंने थोड़े समय में ही तीनों भाषाएँ सीख भी ली थीं। मैकालिफ भी इसी बात से सहमत है तथा वह नानकदेव को सुशिक्षित भी स्वीकार करता है।

कालूचन्द ने आपका मन व्यापार में लगाने का यत्न किया, पर आप व्यापार के लिये मिले धन को साधु-सन्तों को खिला दिया करते थे। खेती में भी आपको लगाया गया, पर आप कहा करते थे :—

राम की चिड़िया, राम के खेत,
खाओ री चिड़ियो भर-भर पेट।

नानकी के पति जयराम आपको अपने साथ सुलतानपुर ले गये तथा वहाँ दौलत खाँ लोदी से आपका परिचय कराया। दौलत खाँ लोदी ने आपको एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति देखकर मोदीखाने का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। इस घटना से सिद्ध होता है कि आप एक अच्छे पढ़े-लिखे तथा फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। जो लोग आपको अनपढ़ मानते हैं, वे आपके प्रति न्याय नहीं कर पाये हैं।

कहा जाना है कि आप तेरा (तेरह) के शब्द पर विशेष रूप से प्रसन्न होकर—कि हे परमात्मा संसार में सब कुछ तेरा ही है—गरीबों को मोदीखाना लटाया करते थे। लोगों ने आपकी शिकायत मोदी से की। परन्तु हिसाब की जाँच-पड़ताल करने पर हिसाब ठीक बैठ जाया करता था। ऐसा दो तीन बार हुआ बताया जाता है। श्रद्धालु इसे भी आपका चमत्कार मानते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि आप अपने वेतन में से दान किया करते थे।

आपने चार उदासियाँ (यात्राएँ) की थीं। जो इस प्रकार हैं :—

१. सन् १४९७ ई० में एक हिन्दू जाट बाला तथा मुसलमान मिरासी मरदाना को साथ लेकर आपने यह उदासी की। पहले आप एमनाबाद में गये। वहाँ आपने लालो नामक बढ़ई के घर डेरा लगाया तथा इस प्रकार छूत-छात की रस्मों को तोड़ा। यहाँ से पूर्व की ओर प्रस्थान किया तथा कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, दिल्ली, अयोध्या, बनारस, बंगाल, ढाका तथा आसाम आदि मे घूमते रहे। आपने यह सारी यात्राएँ पैदल ही कीं। लोगों को सत्य का उपदेश दिया, मूर्ति-पूजा का खण्डन किया तथा निर्गुण भक्ति का प्रचार किया। सन् १५१० ई० मे आप वापिस आ गये।

२. सन् १५१० से १५१४ ई० तक के समय में आप लाहौर, बीकानेर, राजस्थान एवं दक्षिणी भारत होते हुए लंका तक घूमे। दक्षिण में आप द्रविड़ पण्डितों के साथ संस्कृत मे ही वार्तालाप करते थे। सन् १५१४ ई० में आप वापिस आ गये।

३. सन् १५१४ ई० में आपने उत्तरी भारत का भ्रमण किया। आप नेपाल, सिक्किम, तिब्बत एवं काश्मीर में घूमे

तथा सन् १५१८ ई० में वापिस आ गये थे।

४. सन् १५१८ ई० में आपने फिर पश्चिम के प्रदेशों का भ्रमण किया। इस भ्रमण में आपने ईरान, बगदाद, मक्का, बसरा, हलब, काबुल, कन्धार आदि का भ्रमण किया तथा सन् १५२२ ई० में वापिस आ गये।

इस अन्तिम उदासी के पश्चात् आपने रावी के किनारे करतारपुर में विश्राम किया तथा अन्त में सन् १५३९ ई० में आपका यहीं स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ—(१) जपजी, (२) सिद्ध गोष्ठ, (३) राग आसावरी, (४) तीन वारें—आसा दी वार, माझ दी वार तथा मलार दी वार, (५) बारामाह, (६) सोहले, (७) पहरे, (८) वनजारे, (९) अलोहनियाँ, (१०) बाबर वाणी, (११) शब्द, (१२) अष्टपदियाँ, (१३) छन्त, (१४) रेख्ता तथा (१५) श्लोक।

इसके अतिरिक्त प्राण संगली तथा वसीयत नामा की कुछ रचनाएँ भी आपकी कही जाती हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान् इन्हें आपकी रचना नहीं मानते।

मूल्यांकन—गुरु नानकदेव जी के तीन सिद्धान्त थे—(१) नाम जपना, (२) हाथ से कमा कर खाना तथा (३) बाँट कर खाना। आपके साहित्य में इन तीनों सिद्धान्तों की छाप सर्वत्र विद्यमान है। आपका भ्रमण अत्यन्त विशाल था। इस भ्रमण में इन्होंने सभी प्रकार के व्यक्तियों से सम्पर्क किया। आपको जीवन का अत्यन्त गहरा तथा सच्चा अनुभव था। आपने अपनी उदासियों में जहाँ भी किसी प्रकार का बाह्याडम्बर पाया, उसका खण्डन किया। कुरीतियों का खण्डन करके जनता को सच्चे मार्ग का उपदेश दिया। अनेक

प्रकार के सन्तो से इनका सम्पर्क हुआ। कबीर की भक्ति से ही प्रभावित होकर आपने पंजाब में निर्गुण भक्ति का प्रचार किया था। आपका खण्डन का तरीका अनूठा तथा स्वाभाविक था। कबीर की भाँति आप सूखी डाँट-फटकार न करके जनता के भावों को स्पर्श करने वाली उक्तियों से समझाते थे।

आपका साहित्य युग का प्रतिनिधि साहित्य है। आपके समय में स्त्री जाति की दशा शोचनीय होती जा रही थी। मुसलमानों के भय से उन्हे पर्दे में छिपाया जाता था। विद्या प्राप्ति का उन्हे अवसर नही दिया जाता था। नानकदेव जी ने ससार के सभी श्रेष्ठ पुरुषों की उत्पत्ति का कारण स्त्री को बता कर उसका सम्मान बढ़ाया।

आपने अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी चित्रण साहित्य मे किया है। बाबर के सिपाहियों का अत्याचार देख कर आपका हृदय बहुत दुःखी हुआ। आप लिखते हैं—

पाप दी जंझ लै काबुलों धाइया,
जोरी मगे दान वे लालो।

जनता की पीड़ा देख कर आप ईश्वर से कहते हैं—

ऐती मार पइ कुरलाणे, तैं की दरद न आया।

आपकी कविता में प्रकृति-चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। बारहमाह प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से सुन्दर रचना है। उद्दीपन रूप में ही प्रकृति का चित्रण प्राय. हुआ है। इस चित्रणों मे प्रेम की पीड़ा तथा विरह का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है—

चेत बसन्त भला भवर सुहावड़े।
बन फूले मंझ बारी पिर घरि बहुड़े।

विरु घरि नही ग्राछे धन किउ सुख पावै।
विरहि विरोध तन छीजै।

ग्रापकी कविता में यो तो लगभग सारे ही रस मिलते हैं, परन्तु शान्त, शृंगार, अद्भुत, करुण तथा हास्यरस अधिक मिलते हैं। ग्रापको सगीत का ग्रच्छा ज्ञान था। ग्रापकी वाणी रागो मे वँधी हुई है। ग्रापने १६ रागों का प्रयोग किया है। ग्राप प्राय गाया करते थे, तथा ग्रापके साथी—वाला ग्रौर मरदाना—वाद्य बजाया करते थे। छन्दों का चुनाव भी रागों के ग्रनुरूप ही है। भाव के ग्रनुरूप ही राग तथा छन्द का चुनाव किया गया है। दोहा, सोरठा, चौपदी ग्रादि ग्रनेक छन्दो का प्रयोग किया गया है।

ग्रलकार के प्रति ग्रापका मोह नही रहा। स्वाभाविक रूप से ही ग्रलकार कविता में ग्राये हैं। ग्रापका उद्देश्य कविता करना नही था। ईश्वरीय प्रेम में डूब कर वे जो ग्रात्माभिव्यक्ति करते थे, वह ग्रपने-ग्राप ही राग, छन्द, ग्रलकार ग्रादि से सजी होती थी।

काव्य की दृष्टि से ग्रापकी कविता का दुर्बल ग्रग भाषा है। सच्ची बात यह है कि ग्रपनी वाणी को जन-सामान्य की समझ योग्य बनाने के लिये ग्रापने भाषा जन-सामान्य की ही ग्रपनायी थी। फिर ग्राप का भ्रमण ग्रत्यन्त विस्तृत था। प्राय जहाँ जाते थे, वहाँ की भाषा के सामान्य शब्द ग्रपना लेते थे। यो ग्रापको सस्कृत, हिन्दी तथा फारसी का ग्रच्छा ज्ञान था। परन्तु शुद्ध तथा साहित्यिक भाषा के प्रयोग के प्रति ग्राप उदासीन थे। फिर भी वाणी की सरसता, सरलता तथा मर्मस्पर्शिता ग्रापके साहित्य में पर्याप्त मिलती है। ग्रापकी भाषा में समाहार शक्ति तथा मार्मिकता इतनी ग्रधिक है कि

आपके वाक्य पंजाब के जन-जीवन में मुहावरों के समान प्रसिद्ध हैं। आपकी वाणी जन-सामान्य के नित्यप्रति के जीवन का अंग बनी हुई है।

कुछ संकुचित मनोवृत्ति वाले लोग आपको केवल सिक्खों तक ही सीमित मानते हैं। परन्तु यह उनकी दुर्बुद्धि ही कही जायेगी। सिक्खों की तो बात ही क्या, आप समस्त संसार के थे। उनकी दृष्टि में मानव मात्र समान थे। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी का सुख उनका सुख था। वे सभी को सुखी देखना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने बाँट कर खाने का उपदेश सभी को दिया था।

गुरु अंगद साहिब

आपका जीवन काल सन् १५०४ से लेकर सन् १५५२ ई० तक माना जाता है। अन्य गुरुओं की अपेक्षा आपकी वाणी गुरु ग्रन्थ साहिब में सब से कम है। आपकी कविता का विषय प्राय: सेवक की स्वामी के साथ आदर्श प्रीति से सम्बन्धित होता है। जीवन की सरलता आपकी कविता में भी विद्यमान है। सरल जन-भाषा में सरल तथा सरस उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। स्वामी के प्रति दीनता, विनम्रता, प्रेम पर बलिदान की भावना आपकी कविता में कूट-कूट कर भरी हुई है। आपने संसार में रह कर संसार की सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म बताया है। आपके जीवन के अनुभव से भरे हुए अनेक वाक्य मुहावरों की भाँति पंजाब के जन-जीवन में प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. जिस पियारे सिउ नेहु, तिस आगै मरि चलिये।
ध्रिग जीवन संसारि, ता कै पाछै जीवना॥

१. इहु मनु चंचल, वस ना आवै ।
२. जो सच रटै, तिन सचो भावै ।
३. निरगुण सरगुण, आपे सोई ।
४. सो वराहमण भला आखिये, जो बूझै वरहम विचार ।

गुरु रामदास

आपका जीवन काल सन् १५३४ से सन् १५८१ ई० तक माना जाता है । आपकी कविता में प्रेम का तीव्र प्रवाह भरा हुआ है । आपकी भावुकता अत्यन्त तीव्र है । गुरु जनों के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम को आपने विशेष महत्त्व दिया है । आपकी कविता के चरण प्रायः लम्बे हो जाते हैं, परन्तु सर्वत्र एक-सी लय विद्यमान रहती है । भाव के अनुरूप ही शब्दों का चुनाव किया गया है । कविता में 'मेरे पियारे', 'मेरी जिंदड़िये' आदि शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है । दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. पिर रतिअड़े मैंडे लोइण,
　　मेरे पियारे चातृक बूंद जिवै ।
　मन सीतल होइया मेरे पियारे,
　　हरि बूंद पिवै ।
　तन विरहु जगावै, मेरे पियारे,
　　नींद न पवै किवै ।
२. चड़ि चेतु बसंत मेरे पियारे, भलिअ रुतै ।
　पिर बाझड़ियाहु मेरे पियारे, आंगण धूड़ लुतै ।
　मन आस उडीणी मेरे पियारे, दुइ नैन जुतै ।
　गुरु नानकु देखि विगसी मेरे पियारे, जिऊँ मात सुतै ।

गुरु अर्जुनदेव

आपका जीवन काल सन् १५६३ से सन् १६०६ ई० तक जाता है। आप गुरु रामदास जी के पुत्र थे। आपके दो और भी थे। आप हमेशा पिता की आज्ञा का पालन करते थे। अन्त में आपको ही गद्दी का अधिकारी [illegible] गया।

[illegible]पने निजी जीवन में भी प्रेम तथा सेवा को विशेष अपनाया था। आप प्रतिभाशाली थे। आपकी वाणी [illegible] विषय ईश्वर प्रेम, मानवीय सेवा, जीवन में पूर्ण [illegible]स्थापना है। निम्नलिखित शब्द आपके गुरु-प्रेम तथा [illegible]वना का सुन्दर उदाहरण हैं—

मेरा मन लोचे गुरु दरशन ताईं।

[illegible] ग्रन्थ साहिब में सबसे अधिक आपकी वाणी ही [illegible] होती है। आपने सन् १६०४ ई० में १४३० पृष्ठों के [illegible] साहिब का सम्पादन किया। अपने से पूर्व गुरुजन [illegible]बीर, फरीद आदि सन्तों की वाणी को आपने इसमें [illegible]या है। आपने सारी वाणी को रागों के अनुसार है। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ कही जाती हैं—

[illegible]१) बावन अक्खरी, (२) जैत सरी दी वार, (३) [illegible] साहिब, (४) माया, (५) फुनहे, (६) मारू डखणे, [illegible] वारा, (८) राग माझ, (९) सहसकृती, (१०) [illegible]री, शब्द आदि।

योजन—आपकी कविता का विषय मुख्य रूप से प्रेम, तथा मानवीय सेवा है। आपकी कविता में प्रेम को प्रभु से मिलन की तीव्र लालसा स्थान-स्थान पर

व्यक्त होती है। जीवन में शान्ति को इतना अधिक महत्त्व आप देते थे कि मुसलमान शासकों के अत्याचार को आपने शान्त भाव से सह लिया था। अन्त में अपना बलिदान देते हुए भी वे यही कहते हैं—

तेरा कीता मीठा लागै,
हरि नाम पदारथ नानक मांगै।

यों तो अनेक रस आपकी कविता में उपलब्ध होते हैं, परन्तु सबसे अधिक स्थान शान्त रस को मिला है। सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाली भाषा में आपने प्राकृतिक जीवन के उपमानों से पूर्ण कविता की है। चिड़िया, चातक, बादल, बिजली आदि अप्रस्तुत विधान का प्रयोग किया गया है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. चिड़ी चुहकी, पहु फुटी, वगन बहुतु तरंग।
२. उपर बन्ने आकाश तले धर मोहनी।

भाषा आपकी सरल तथा जन-साधारण के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली है। आपको संगीत का अच्छा ज्ञान था। आपने अपनी वाणी को रागों में बांधा है। भाव के अनुकूल ही राग तथा छन्द का चुनाव किया गया है। भाषा पर आपका असाधारण अधिकार था। भावों के अनुरूप ही शब्दों का सुन्दर चयन आपकी कविता में पाया जाता है। आपने निष्य-प्रति कीर्तन करने पर बल दिया है।

पंजाबी साहित्य में आपका विशेष स्थान है। आपने अपनी वाणी से जो साहित्य की सेवा की, वह तो प्रशंसनीय है ही, साथ ही गुरु ग्रन्थ साहिब का सम्पादन करके जो साहित्य की सेवा की है, वह भी अविस्मरणीय कार्य है। पंजाब के इतिहास, पंजाबी साहित्य, पंजाबी भाषा तथा

पंजाबी सभ्यता के ऊपर गुरु अर्जुनदेव का अमिट प्रभाव है।

भाई गुरदास

आपका जीवन काल सन् १५५८ से सन् १६६७ ई० तक माना जाता है। आप गुरु रामदास के भतीजे थे। आप गुरु-घर के निकट ही रहते थे तथा आपका सारा जीवन गुरुओं की सेवा में ही व्यतीत हुआ था। आपको संस्कृत, ब्रजभाषा तथा फारसी का अच्छा ज्ञान था। गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन में आपने लेखक का कार्य किया था।

आपने पंजाबी में ३६ वारें लिखी हैं। पंजाबी के अतिरिक्त आपने ब्रजभाषा में कवित्त तथा सवैये भी लिखे हैं।

मूल्यांकन—आपने पंजाबी साहित्य की महान् सेवा की है। भाव पक्ष तथा कला पक्ष दोनों की दृष्टि से आपकी रचनाएँ सुन्दर बन पड़ी हैं। आपकी कविता का विषय मुख्य रूप से गुरुमत के सिद्धान्तों तथा गुरुवाणी की व्याख्या प्रस्तुत करना रहा है। वार साहित्य में तो आपकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती। आपने सबसे अधिक वारें लिखी हैं। वारें अपने सच्चे स्वरूप में प्रस्तुत की गयी हैं। वीर रस की इनमें भरमार है, फिर भी इनमें आध्यात्मिकता की कमी नहीं कही जा सकती। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वारों में आपने जहाँ सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों तथा गुरुवाणी की व्याख्या प्रस्तुत की है, वहाँ अन्य विषयों पर भी लेखनी उठायी है। गुरुओं के चमत्कार, अकाल पुरुष, सृष्टि रचना, सिक्ख का प्रेम, सिक्ख धर्म के गुण, सेवा, नम्रता तथा

हंसा नाल टटोहरी, किउँ पहुँचे दौड़ी।
सावण वण हरियावले, अक जम्मे अउड़ी।
वेमुख सुख न देखई, जिउँ छुट्टड़ थोड़ी।
२. लैला मजनूँ आशकी, चहुँ चकी जाती।
सोरठ वीजा गाविये, जस सुघड़ा वाती।
महिवाल नूँ सोहणी, लै तरदी रातीं।
राँझा-हीर विखाणिये, उह पिरम पिराती।
पीर मुरादाँ पिरहडी, गावण प्रभाती॥

गुरु गोविन्दसिंह

आपका जीवन-काल सन् १६६६ से सन् १७०८ ई० तक माना जाता है। आप गुरु तेगबहादुर के पुत्र थे और आपका जन्म पटना मे हुआ था। आप अभी बालक ही थे कि गुरु तेग-बहादुर जी का बलिदान हो गया। आप में नेतृत्व की अद्‌भुत क्षमता थी। आपने अपनी छोटी-सी आयु में ही सिक्ख जाति में महान् सगठन उत्पन्न कर दिया। सारी जाति को जत्थे-बन्द कर दिया। आपके नेतृत्व में सिक्ख जाति—जो कि शान्ति का जीवन बिताने वाले व्यक्तियो का एक समूह थी—वीर योद्धाओं के समूह मे परिवर्तित हो गयी। आपने मुसलमान राजाओं तथा पहाड़ी राजाओं के अन्याय एवं अत्याचार का डट कर सामना किया। अन्त में आप दक्षिण की ओर चले गये। वहाँ आपका स्वर्गवास हुआ।

आप जहाँ स्वयं कवि थे, वहाँ कवियों तथा विद्वानों का भी बहुत सम्मान करते थे। कहा जाता है कि आपकी सभा में ५२ कवि थे। युद्ध के लिये जाने से पहले आप सेना के साथ वीर रस-पूर्ण कविता का पाठ श्रवण करते थे।

रचनाएँ—सारी रचनाएँ दशम ग्रन्थ के नाम से संग
है। इसमें अन्य कवियों की भी रचनाओं को स्थान
गया है। दशम ग्रन्थ में निम्नलिखित रचनाएँ सम्मिलित हैं—

(१) जापु साहिब, (२) अकाल उसतति, (३) ब
नाटक, (४) चण्डी चरित्र उक्ति बिलास १, (५) चण्डी च
उकति २, (६) चण्डी दी वार (भगवति की वार), (
गियान प्रबोध, (८) चौबीस अवतार, (९) सहसनर
माला, (१०) तेतीस सवैये तथा एक दोहा, (११) ज
नामा, (१२) शब्द चौपाई तथा (१३) त्रिया चरित्र।

परन्तु उपरोक्त रचनाओं में से गुरु गोबिन्दसिंह जी
कौनसी हैं, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है।
मोहनसिंह त्रिया चरित्र के अतिरिक्त सारी रचनाएँ प्रा
मानते हैं, परन्तु अन्य विद्वान् इनके मत से सहमत नहीं हैं।

मूल्यांकन—गुरु गोबिन्दसिंह ने पंजाबी में केवल च
दी वार लिखी है, एक 'शब्द' भी पंजाबी में मिलता है,
सारी रचनाएँ ब्रज भाषा में हैं।

चण्डी दी वार वीर रस-प्रधान रचना है। इसकी क
वस्तु मारकण्डेय पुराण से ली गयी है, जिसके अनुसार दे
भगवती को राक्षसों से घोर युद्ध करना पड़ता है। राक्ष
अत्यन्त वीर तथा युद्ध कला में प्रवीण होते हैं, परन्तु अन्त
धर्म की ही विजय होती है।

इस वार का उद्देश्य अपने योद्धाओं के हृदय में साह
तथा उत्साह का संचार करते हुए उनका मार्ग-दर्शन कर
है कि जिस प्रकार देवी भगवती ने अन्त में राक्षसों पर विज
प्राप्त की, उसी प्रकार तुम भी अन्त में अन्यायी मुसलमा
शासकों पर विजय प्राप्त करोगे।

इस वार में सर्वत्र वीर रस का प्राधान्य है। वीर रस के उपयुक्त ही ओज-व्यंजक शब्दावली भी प्रयुक्त की गयी है। वार साहित्य का वास्तविक स्वरूप इस वार में चित्रित हुआ है। पढ़ते ही हृदय उत्साह से भर जाता है। भाषा पर आपका बहुत अधिकार था। भावों के अनुकूल ही भाषा में शब्दों का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए वे लिखते हैं—

दसम कथा भगौत दी, भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहि मोरे, धरम जुध दा चाइ।

आपने अपने जीवन में एक ही उद्देश्य रखा था—'अधर्म तथा अन्याय का नाश' करना है। इसी के लिये आपने जीवन अर्पण कर दिया था। आप स्पष्ट कहते हैं—

हम इह काज जगत में आये।
धरम हेत गुरदेव पठाये।

वे स्वयं भगवान् से भी यही वर मागते हैं कि—

देहि शिवा वर मोहि इहै,
शुभ करमन ते कबहूँ ना टरौं।

आपको युद्ध का साक्षात् अनुभव था, इसलिये आपकी कविता में युद्ध के प्रसंग अत्यन्त उत्साहवर्द्धक तथा प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। इस वार के अतिरिक्त आपके कुछ शब्द भी पंजाबी में मिलते हैं। इनमें भी 'मेरे मितर पियारे नूं हाल मुरीदाँ दा कहिणा' वाला शब्द बहुत सुन्दर बन पड़ा है। प्रिय का विछोह, हृदय को विवशता तथा करुणात्मक भावात्मकता तो कूट-कूट कर भरी गयी है।

आपने चाहे पंजाबी में बहुत कम साहित्य लिखा है, परन्तु जो भी लिखा है, उस पर पंजाबी भाषा को अत्यन्त गर्व है।

आपका साहित्य उच्च कोटि का है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इस साहित्य ने समय की माँग को पूरा किया। जिस उद्देश्य के लिये गुरु गोविन्दसिंह ने अपना जीवन बलिदान किया, उसकी सिद्धि में 'चण्डी दी वार' का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

गुरु ग्रन्थ साहिब

इसका सम्पादन सन् १६०४ ई० में हुआ था। इसके दो संस्करण मिलते हैं—

(१) पहला संस्करण भाई गुरदास जी द्वारा सम्पादित है। इसे करतारपुर वाली प्रति भी कहा जाता है। इसमें गुरु नानकदेव, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, १५ भक्तों की वाणी (कबीर, फरीद, नामदेव, रविदास आदि) तथा १५ गुरु-परिवार के निकट के पुरुषों (सत्ता, बलवंड, भाई गुरदास आदि) की वाणी संग्रहीत है।

(२) दूसरा संस्करण भाई मनीसिंह जी द्वारा सम्पादित है। यह दमदमा वाली प्रति कहलाती है। इसमें पहली प्रति की वाणी के साथ गुरु तेगबहादुर जी की वाणी तथा गुरु गोविन्दसिंह जी का एक शब्द और सम्मिलित कर लिया गया है।

गुरु ग्रन्थ साहिब का संकलन गुरु अर्जुनदेव जी ने किया था। गुरु ग्रन्थ साहिब में सबसे अधिक वाणी आपको ही उपलब्ध होती है। आपने सारी वाणी को रागों में विभाजित किया है। अनेक रागों का प्रयोग हुआ है, जैसे कि माझ, गौड़ी, आसावरी, गूजरी, देव गन्धार, बिहाग आदि।

प्रत्येक राग के नाम से पहले एक शब्द होता है, फिर अष्टपदी छन्द तथा इसके बाद कविताएँ होती हैं। इसके बाद

भक्तों की वाणी तथा फुटकल रचनाएँ होती हैं। प्रत्येक राग में गुरुवाणी के पश्चात् वार दी गयी है। राग का विशिष्ट ध्वनि-संयोजन भी होता है। राग के साथ गुरु गद्दी का क्रमांक दिया गया है।

इस प्रकार यह एक विशालकाय ग्रन्थ बन गया है। इसके १४३० पृष्ठ तथा लगभग ६० हजार पक्तियाँ हैं।

मूल्यांकन—गुरु ग्रन्थ साहिब में यों तो अनेक कवियों की रचनाएँ हैं, जिनके भिन्न-भिन्न विषय है, परन्तु फिर भी मुख्य रूप से सारी वाणी का विषय मानव की आध्यात्मिक उन्नति है। मानव किस प्रकार अपने दुर्गुणों को त्याग कर गुणों की वृद्धि करे तथा गुरु-कृपा से ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति करे—इसी से सम्बन्धित रचनाओं को इसमे स्थान दिया गया है। सारी वाणी में भक्त के लिये अहकार का त्याग, गुरु पर विश्वास और आत्म-समर्पण की भावना पर बल दिया गया है। वाह्याडम्बर, कुरीतियाँ तथा झूठे लोक-दिखावे का खण्डन किया गया है। भक्त को इन सभी दुर्गुणों को छोड़कर विनम्रता, दीनता, क्षमा, दया, बलिदान आदि गुणों को अपनाना चाहिये।

इस प्रकार गुरु ग्रन्थ साहिब में जहाँ लोक-जीवन को उन्नत बनाने का उपदेश दिया गया है, वहाँ ईश्वरीय प्रेम का भी पर्याप्त चित्रण हुआ है। यह ईश्वरीय प्रेम भक्त की भावना अनुसार है, परन्तु फिर भी अधिकता पति-पत्नी भाव की ही है। ईश्वर को पति के रूप में तथा आत्मा को पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है। आत्मा परमात्मा के वियोग में विरहिणी नायिका की भाँति तड़पती है। यह प्रेम स्वकीया भाव का है। इसमें किसी से छुपाव या गोपनीयता नहीं है। इस प्रकार शृङ्गार रस के अनेक सुन्दर चित्र इसमें उपलब्ध

होते हैं।

दाम्पत्य भाव के अतिरिक्त यह ईश्वरीय प्रेम, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, स्वामी-सेवक रूप में भी दर्शाया गया है। शृङ्गार के अतिरिक्त शान्त रस की भी प्रचुर अभिव्यजना हुई है। फिर भी संसार से वैराग्य का भाव कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। संसार में रह कर मानव मात्र की सेवा गुरुमत का प्रमुख सिद्धान्त है। ईश्वर की अवस्थिति इसी संसार में है, बाहर जंगलों में भटकने से ईश्वर नहीं मिलता। उसे इसी संसार में रह कर प्राप्त किया जा सकता है। शान्त रस के अतिरिक्त करुण, अद्भुत, हास्य आदि रसों की भी सुन्दर रचनाएँ उपलब्ध होती है।

गुरु ग्रन्थ साहिब की भाषा पंजाबी तथा हिन्दी मिश्रित है। उसे सघुक्कड़ी भाषा भी कहा जा सकता है, परन्तु प्रमुखता पंजाबी भाषा की है। इसमें भारत की प्रायः सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। नवागन्तुक मुसलमानों की भाषा अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थ की वाणी अत्यन्त मीठी है। सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है। जन-सामान्य की प्रचलित भाषा का ही प्रयोग हुआ है। पंजाबी की विविध बोलियाँ इसमें उपलब्ध होती हैं। उदाहरण के लिये लहँदी, पोठोहारी, माझी आदि का नाम लिया जा सकता है।

भाषा में समाहार शक्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। यही कारण है कि इसके सहस्रों वाक्य मुहावरों की भाँति पंजाब के जन-जीवन में प्रचलित हैं। दो उदाहरण इस प्रकार

–

१. मन जीते जग जीत।   २. मिठें सो गउरा हाे।

भाषा सर्वत्र भावों के अनुरूप है। सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को अप्रस्तुत विधान के रूप में ग्रहण किया गया है। गगरी, कुँआ, बादल, धान, खेत, चातक, पपीहा, स्वाति बूँद, वर्षा, नदी, आकाश आदि का नाम उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। अलंकार स्वाभाविक रूप से ही आये हैं। अलंकारों के प्रति मोह इन भक्त कवियों तथा गुरुओं को नहीं रहा।

इसमें छन्द-विधान भी अच्छा बन पड़ा है। विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। सवैया, कवित्त, दोहा, सोरठा, सिरखंडी, चौपाई आदि का नाम उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। कहीं-कहीं मात्राओं में अन्तर भी पड़ गया है। कारण यह है कि समस्त ग्रन्थ में छन्दों की अपेक्षा राग पर अधिक ध्यान दिया गया है। राग के अनुरूप ही मात्राओं का क्रम होने के कारण यति आदि दोष उत्पन्न हो गये हैं।

युग का प्रतिनिधि ग्रन्थ होने के कारण गुरु ग्रन्थ साहिब का विशेष महत्त्व है। भारत में वह समय ऐसा था, जबकि मुगल शासक तलवार के जोर से धर्म-प्रचार कर रहे थे। दूसरी ओर अनेक मत तथा सम्प्रदाय भी उत्पन्न होते जा रहे थे। सामान्य जनता की पहुँच वेदों तथा उपनिषदों के ज्ञान तक नहीं थी। गुरुओं ने सभी धर्मों की अच्छी बातों का प्रतिपादन किया। जनता को कुप्रथा तथा मिथ्याडम्बरों के प्रति सचेत किया। उपनिषदों के ज्ञान को अत्यन्त सरल ढंग से जनता की भाषा में ही उनके सम्मुख रखा।

गुरु ग्रन्थ साहिब में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का यथातथ्य प्रस्तुतीकरण किया गया है। गुरुओं ने मुसलमानों के अत्याचारों का स्पष्ट चित्र इस

ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अन्याय के प्रति आवाज भी उठायी है। उदाहरण के लिये बाबर वाणी में गुरु नानकदेव बाबर के अत्याचारों का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

पाप दी जंझ लै काबुलों धाइया,
जोरी मगे दान वे लालो।

इस प्रकार गुरु ग्रन्थ साहिब का साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि अनेक दृष्टियों से महत्त्व है। पंजाबी साहित्य का यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी उपमा किसी अन्य ग्रन्थ से नहीं दी जा सकती। यह एक महासागर के समान है, जिसमें अनेक प्रकार के रत्न प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होते हैं। देश तथा विदेश के अनेक विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। संसार के अन्य धर्म-ग्रन्थ प्रायः उन धर्मों के प्रवर्तकों के द्वारा लिखे गये हैं, परन्तु यह धर्म-ग्रन्थ सिक्ख धर्म के प्रवर्तकों तथा अनुयायियों के साथ अन्य भक्तों की वाणी को भी समान महत्त्व देता है।

भक्ति साहित्य के अन्य कवि

नानक युग में गुरमत के साहित्य के अतिरिक्त कुछ और भी भक्ति साहित्य लिखा गया है। यह साहित्य प्रायः राम तथा कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित है। हम पहले ही कह आये हैं कि यह समय भारत में भक्ति भाव से ओत-प्रोत रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे तो इस काल का नाम ही भक्ति काल रखा गया है। पजाबी साहित्य में भी कुछ हिन्दू-भक्तों ने गुरुमत से भिन्न राम तथा कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना की मधुर अभिव्यक्ति की। इसमें कवि का प्रयोजन भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ साधन सिद्ध करना रहा है। इसमें वेदान्त तथा जीवन की अस्थिरता का भी चित्रण हुआ है।

इस साहित्य की भाषा गुरुमत के साहित्य से कही अधिक साहित्यिक तथा अन्य भाषाओं की शब्दावली से मुक्त है। ठेठ केन्द्रीय पंजाबी को अपनाया गया है। वाणी का मिठास भी पर्याप्त विद्यमान है। इस साहित्य पर गुरु नानकदेव तथा मीरा का प्रभाव प्रतीत होता है। भाव की तीव्रता के कारण यह साहित्य सीधे हृदय पर प्रभाव डालता है।

भक्त कान्हा

आप गुरु अर्जुनदेव के समकालीन थे। आपका जीवन लाहौर में व्यतीत हुआ था। अपने समय में आप काफी प्रसिद्ध हो गये थे। आपकी कविता में अधिक भावात्मकता नही है। आपकी कविता पर सिक्ख मत तथा सूफियों की भावात्मकता का अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। आपने उसे अपनाने का भी यत्न किया था, ऐसा आपकी कविता से प्रतीत भी होता है, पर वैसी भावप्रवणता आपकी कविता में नही आ सकी है।

बलीराम

आप शाहजहाँ के समकालीन माने जाते हैं। आपकी कविता पंजाब विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति क्रमांक ४६१ में अंकित है। आपकी कविता में भावात्मकता अत्यधिक पायी जाती है। भावप्रवणता की दृष्टि से आप अपने समकालीन सभी कवियों से बाजी ले गये हैं। भाषा भी आपकी मीठी तथा सरल है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

> अग्नी हाल छपदा भी नाही,
> किचरक आप छुपाई।
> सिकण छपे, कि तपण छपे,
> हंजू छपण कि माहीं।

भक्ति साहित्य के कवियों में और भी अनेक कवि हुए हैं। बाबा सुन्दर, सत्ता, बलवंड, छज्जू, बूड़ा, ग्वाल, सेवादास, लाल गियाली, मस्तराम, दादू, हृदयराम आदि अनेक कवियों के नाम उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं।

सूफी साहित्य तथा कवि

नानक युग के पंजाबी साहित्य में गुरुमत के साहित्य के पश्चात् दूसरे स्थान पर सूफी साहित्य आता है। आजकल सूफी, मुसलमान सन्त को कहा जाता है। पहले ये सूफी मुसलमानों से भिन्न समझे जाते थे। सूफियों के मत से इनका धर्म हजरत मुहम्मद साहिब से भी पहले से चला आ रहा है। मुसलमानों के साथ ही इन्होंने भी भारत में प्रवेश किया था। पहले इन्होंने मुलतान को अपना धार्मिक केन्द्र बनाया। बाद में तो ये भारत के अनेक भागों में फैल गये।

व्युत्पत्ति

इनका नाम सूफी क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। प्रमुख रूप से पांच शब्दों से सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है :—

(१) सफ—सफ का अर्थ पवित्र होना है। कहा जाता है कि सूफी सन्त एक पंक्ति मे खड़े होकर नमाज पढ़ा करते थे, इसी से ये सूफी कहलाये।

(२) सफा—सफा का अर्थ होता है पवित्रता। ये सूफी सन्त अत्यन्त पवित्र, सादा तथा सच्चाई के साथ जीवन व्यतीत करते थे। इसीलिए इन्हें सूफी कहा जाने लगा।

(३) सुफ्फा—सुफ्फा का अर्थ होना है चबूतरा। ये सूफी सन्त मक्के में बने एक चबूतरे पर बैठकर नमाज़ पढ़ा करते थे। इसी के आधार पर ये सूफी कहलाने लगे।

(४) सोफिया—सोफिया का अर्थ होना है ज्ञान। ये सूफी सन्त आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण ही सूफी कहलाये।

(५) सूफ—सूफ कहते हैं सफेद ऊन को। पवित्र तथा सादा जीवन बिताने के कारण ये सूफी सन्त सफेद ऊन से बने कपड़े पहना करते थे, इसी से इनका नाम सूफी प्रचलित हो गया।

उपर्युक्त पाँचों मतों में अन्तिम मत ही विद्वानों को सर्वाधिक मान्य है। अतः सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ (सफेद ऊन) से मानना ही उचित प्रतीत होता है।

स्वरूप

सूफी सम्प्रदाय की मुख्य विशेषता इनकी प्रेम भावना है। संसार की प्रत्येक वस्तु प्रेममय है तथा प्रेम की शक्ति ही उसे संचालित कर रही है। ईश्वर भी प्रेम रूप है, तथा उसकी प्राप्ति भी प्रेम से ही सम्भव है। इनकी साधना दाम्पत्य प्रेम पर आधारित है, परन्तु यह दाम्पत्य प्रेम भारतीय दाम्पत्य प्रेम से भिन्न है। भारत में आत्मा को स्त्री तथा परमात्मा को पुरुष रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि सूफी सिद्धान्तों के अनुसार आत्मा पुरुष रूप तथा परमात्मा स्त्री रूप है। पुरुष अपनी प्रियतमा के प्रेम में व्याकुल होकर अपने घर से निकलता है तथा प्रियतमा की गली अथवा दरवाज़े पर धूनी रमा देता है।

यह प्रेम अनादि काल से चला आ रहा है। जन्म-जन्मान्तरों का प्रेम है, जो जीव के मन में विस्मृत अवस्था में रहता है। गुरु की प्रेरणा से यह प्रेम जागृत होता है, तथा गुरु के बताये मार्ग पर चल कर ही साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। ईश्वरीय प्रेम से पहले प्रेम का स्वरूप भी स्पष्ट होना चाहिए। इसलिये सूफी सिद्धान्तों में लौकिक प्रेम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः साधक पहले लौकिक प्रेम ही करता है। यही लौकिक प्रेम बाद में पारलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाया करता है।

ईश्वरीय प्रेम की साधना की चार अवस्थाएँ हैं :—

(१) शरीयत—इसमें साधक की विस्मृति की अवस्था समाप्त हो जाती है। उसे ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम जागृत हो जाता है तथा इस प्रेम मे उसकी अवस्था विक्षिप्त की-सी हो जाती है। यह प्रेम चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन आदि मात्र से ही उत्पन्न हो जाया करता है। दर्शन कराने वाला गुरु ही होता है।

(२) तरीकत—इस अवस्था मे साधक लक्ष्य-सिद्धि के लिये सर्वस्व त्यागकर सन्यासी बनकर चल पड़ता है। आत्मा-परमात्मा के मिलन में शैतान बाधक है। मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ भी आती हैं, परन्तु गुरु के बताये मार्ग पर साधक बढ़ता ही चला जाता है।

(३) हकीकत—इस अवस्था में साधक अपने लक्ष्य के निकट पहुँच जाता है। उसे अपने प्रियतम के दर्शन भी हो जाते हैं, परन्तु शैतान की बाधा के कारण मिलन नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप विरह-व्यथा बढ़ती जाती है।

(४) मारफत—विरह जब अत्यन्त तीव्र हो जाता है तो अन्त म शैतान भी मार्ग से हट जाता है तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है। साधक सिद्धि मे ही लीन हो जाता है। वह चारों ओर परमात्मा के ही दर्शन करता है। यही अन्तिम अवस्था मारफत कहलाती है।

कविता

इस प्रकार इनकी कविता किसी-न-किसी प्रेम-कथा से युक्त होती है, जिसमें नायक आत्मा का तथा नायिका परमात्म का प्रतीक होती है। सारा ही काव्य प्रेम की पीड़ा, व्यथा तथ

आँसुओं में डूबा होता है। प्रेम के सयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षो का चित्रण अत्यन्त मार्मिक होता है। फिर भी वियोग को अधिक स्थान दिया जाता है। मानव का हृदय वैसे भी वियोग से अधिक प्रभावित होता है। वियोग पक्ष का चित्रण जितना हृदय-ग्राही तथा मार्मिक सूफी साहित्य में हुआ है, उतना अन्य साहित्य में कम ही उपलब्ध होता है।

भारत में इन सूफियों का प्रवेश इस्लाम धर्म के प्रचार के उद्देश्य से हुआ था। इन सन्तों ने भारत के जिस-जिस भाग में निवास किया, वहीं की लोक-भाषा में जन-सामान्य में प्रचलित प्रेम-गाथाओं को अपनाकर अपने धर्म के स्वरूप में रंग कर उपस्थित किया। इन काव्यों का बाह्य स्वरूप भारतीय ही होता था, परन्तु उसकी आत्मा अभारतीय। सूफी मत का स्वरूप तथा शैली अभारतीय होती थी, इस शैली को मसनवी शैली भी कहते हैं।

पंजाब में इन सूफियों ने बहुत पहले ही अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। १२वीं शती में ही बाबा शेख फरीद हो चुके थे। नानक युग में भी अनेक सूफियों ने पंजाबी में साहित्य रचना की। साहित्य की दृष्टि से इस साहित्य का अपना विशेष महत्त्व है। रागात्मकता, भावात्मकता, कल्पना की विविधता, भाषा की मिठास आदि अनेक गुणों से यह साहित्य समृद्ध है। पंजाब की प्रेम-गाथाओं में हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल, मिर्जा-साहिबाँ आदि को अपनाया गया है।

इस कविता में सामान्य जीवन से ही अप्रस्तुत विधान लिया गया है। शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग भी किया गया है। काव्य रूप की दृष्टि से यह कविता बारामाह, अठवारे, सीहरफी, वैत तथा दोहे आदि के रूप में है।

इन सूफी कवियों का प्रयोजन चाहे कुछ भी रहा हो, परन्तु इतना तो निश्चय ही मानना पड़ेगा कि इन्होंने पंजाबी साहित्य की सराहनीय सेवा की है।

शाह हुसैन

आपका जन्म लाहौर में हुआ था, तथा वहीं आपका पालन-पोषण भी हुआ। आपका जीवन काल सन् १५३९ से सन् १५९९ ई० तक माना जाता है। आपके बाबा हिन्दू थे, जिन्होंने बाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। आपके पिता का नाम नउशेख उसमान था तथा वे जुलाहे का कार्य करते थे। शाह हुसैन पक्के मुसलमान थे। इस्लाम धर्म की मान्यताओं का प्रयत्नपूर्वक पालन करते थे, परन्तु बाद में आपको सूफी सिद्धान्तों से प्रेम हो गया। पहले आप अबू बकर की शिष्यता में थे; बाद में आप सूफी सन्त बहलोल के शिष्य बन गये।

आप बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। अभी आप छोटे ही थे कि आपने कुरान शरीफ कण्ठस्थ कर लिया था। सूफी सिद्धान्तों से प्रभावित होने के पश्चात् आपने सूफी ग्रन्थों का अध्ययन किया। आपकी विद्वता की प्रशंसा में फरद सन्त ने लिखा था :—

इस कसबे विच बहुते आलम फाजल होए।
शाह हुसैन कबीर जो आये, दरगाहे जा खलोए॥

आपका नाम माधोलाल हुसैन भी प्रसिद्ध है। डॉ० लाजवन्ती के अनुसार इनका प्रेम माधोलाल नामक एक हिन्दू से हो गया था। इसी कारण से इनका नाम माधोलाल हुसैन प्रसिद्ध हो गया। परन्तु डॉ० मोहनसिंह इस बात को गलत

मानते हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि शाह हुसैन लाल कपड़े पहनते थे, जिस कारण इनका नाम लाल हुसैन भी प्रसिद्ध रहा। कहा जाता है कि आपने दाता गज बख्श की मज़ार पर तपस्या भी की थी। आपकी मज़ार लाहौर में बागबानपुरा के पास बनी हुई है तथा वहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। आपके श्रद्धालु पर्याप्त संख्या में वहाँ प्रति वर्ष एकत्रित होते हैं।

मूल्यांकन—आपकी रचना अनेक रूपों में मिलती है। डॉ० मोहनसिंह ने काफी खोज करके आपके द्वारा रचित १६५ काफियों का एक संग्रह प्रकाशित किया है। काफियों के अतिरिक्त आपने राग, शब्द तथा दोहे भी लिखे हैं।

आपकी कविता का विषय ईश्वरीय प्रेम है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि सूफी सम्प्रदाय में प्रेम ही एकमात्र वस्तु है, इनकी कविता में भी प्रेम को प्रमुख स्थान मिला है। प्रेम की पीड़ा, विरह की तड़प तथा मिलन की आकुलता से इनकी कविता भरी पड़ी है। राग-तत्व की प्रमुखता है। इनकी कविता को प्रगीत काव्य भी कहा जा सकता है।

डॉ० मोहनसिंह आपको अनुभवी, मस्त, विचारशील तथा चैतन्य कवि मानते हैं। वास्तव में ये सभी गुण इनकी कविता में प्राप्त होते हैं। आप अपनी स्वाभाविक मस्ती में ही अपने भावों को प्रकट करते थे। आपकी कविता स्वाभाविक रूप में, भावावेश होने पर एक प्रवाह की भाँति फूट निकलती है। आप ईश्वर के प्रेम में मग्न रहते थे :—

> सजण दे गल बाँह असाडी,
>   किउँ कर आखाँ छड वे अड़िया।
> पोशनीयाँ दे पोस्त वाँगु,
>   अमल पया साडे हड वे अड़िया।

ईश्वर को आप सर्वत्र व्याप्त मानते है। वे संसार की वस्तु में उसी का प्रकाश व्याप्त देखते है :—

रवा मेरे हाल दा महरम तूं,
अन्दर तूं है बाहर तूं है, राम रोम विच तूं।

इनको कविता की भाषा केन्द्रीय पंजाबी है, जिसमें कहीं-कहीं लहंदी के शब्दों को भी प्रयुक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें फारसी तथा ब्रज भाषा के प्रचलित शब्द मिल जाते हैं। आपकी भाषा भावों के अनुरूप है। अत्यन्त कोमल, मीठी तथा मुहावरेदार भाषा है। सामान्य जीवन के शब्दों को ही आपने अप्रस्तुत विधान के रूप में अपनाया है। चरखा, रहट, अनाज आदि का नाम उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। आपकी कविता में जहां प्रेम की पीड़ा व्यक्त हुई है, वह अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी बन गई है :—

दरद विछोड़े दा हाल नी मैं केनूं आखां?
सूली मार दिवानी कीती,
विरहो पिया साडे खियाल नी मैं केनूं आखां?

पंजाबी साहित्य में बाबा फरीद के पश्चात् आपका ही नाम सूफी कविता में आदर के साथ लिया जाता है। पंजाबी साहित्य को आपने सुन्दर कविता प्रदान की है।

सुलतान बाहु

आपके जीवन के बारे में विशेष रूप से कुछ पता नहीं लगता। आपका जीवन काल सन् १६२६ से सन् १६६० तक माना जाता है। कहा जाता है कि आप झंग के रहने वाले थे। वैसे आपकी मजार झंग जिले के शेरकोट स्थान में बनी हुई है। पंजाबी में आपकी सीहरफियां तथा काफियां प्रसिद्ध हैं।

आपकी अनेक काफ़ियाँ शाह हुसैन से भी सुन्दर बन पड़ी हैं। आप स्वतन्त्र प्रकृति के थे। नियम आदि का पालन इनके स्वभाव के विरुद्ध था। कविता में भी आपके विचारों की पूरी छाप है। भाव की स्वाभाविकता तथा शैली का प्रवाह आपकी कविता के गुण हैं। आपकी भाषा सरल, सरस, परन्तु साहित्यिक केन्द्रीय बोली है, जिस पर लहंदी तथा फारसी का प्रभाव है। कविता की प्रत्येक पंक्ति के अन्त में आप प्रायः 'हू' शब्द प्रयोग करते हैं, जिससे तुक बँध जाती है। एक उदाहरण इस प्रकार है —

ना मैं हिन्दू, ना मैं मुसलम,
ना मैं मुला काजी हू।
ना दिल दोजख मंगे मेरा,
ना शौक बहिश्ती राजी हू।
बाझ विसास रब दे बाहू,
होर सभी झूठी बाजी हू।

शाह शरफ़

आपके जन्म की तिथि का तो पता नहीं चलता, परन्तु मृत्यु सन् १७३४ में मानी जाती है। आप बटाला के रहने वाले थे। कहा जाता है कि आप किसी पारिवारिक बदनामी से अत्यन्त दुःखी हुए तथा घर छोड़कर चल दिये। आपने लाहौर के शेख मुहम्मद फजल कादरी की शिष्यता की थी। आपकी मृत्यु लाहौर में ही हुई तथा वहीं आपकी मजार है।

आपको अपने जीवन काल में ही काफी सम्मान प्राप्त हुआ था। आपकी काफियाँ पंजाब विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति क्रमांक ३२४ में संकलित हैं। आपकी कविता म

प्रमुख विषय अपनेपन को मिटाना है। प्रियतम की प्राप्ति में साधक को साधना करनी चाहिये तथा उसके विरह में धीमे-धीमे उसी प्रकार जलना चाहिये जैसे दीपक जलता है। विरह में उसी तरह तड़पना चाहिये जैसे मछली पानी के बिना तड़पती है, तभी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। आपने भी नित्य जीवन के शब्दों को अपनाया है। भाषा मीठी तथा सरल है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

> पै चकी आप पीसाइये, बिच रंगण तावण ताइये।
> इउँ कपड़ रंग रंगाइए, ताँ नाम मजीठ मदाइये।
> इउँ प्रेम पिआला पीवण, जग अंदर मर-मर जीवण।

प्रेम-कथा काव्य तथा कवि

मुसलमान भारत में अपने साथ शीरी-फरहाद, लैला-मजनू आदि की अनेक प्रेम-गाथाएँ लाये थे। दूसरी ओर सूफी कवियों ने भी अपनी प्रेम से पूर्ण कथाएँ जनता के सामने रखीं। इन से प्रभावित होकर पंजाब के कवियों ने भी पंजाब के जीवन में नित्य-प्रति घटित होने वाली प्रेम-कथाओं को अपनाकर उन्हें कवितावद्ध कथा के रूप में प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। यही प्रेम-कथाएँ पंजाबी में किस्सा-काव्य कहलाती हैं। इन प्रेम-गाथाओं में तथा सूफियों के साहित्य में यही अन्तर होता है कि सूफियों की कथा अन्त में अलौकिक प्रेम में परिणत हो जाती है, उसमें बीच-बीच में कवि अपने सिद्धान्तों की स्थापना करता जाता है, परन्तु इनमें शुरू से अन्त तक प्रेम का एक ही स्वरूप रहता है। कवि के सामने अपने मत विशेष की स्थापना का आग्रह नहीं होता। कवि सीधे-सीधे अपने भावों को बिना किसी लागलपेट के प्रगट करता चला जाता है।

इन कथाओं में प्रायः प्रेम के शुद्ध स्वरूप पर बल दिया गया है। प्रेम की तीव्रता, विरह की जलन तथा मिलन की उत्कण्ठा का प्राधान्य होते हुए भी वासना को भरसक दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। इस काव्य में कवि प्रेम से ही प्रभावित होता है तथा हृदय के उद्वेग को अभिव्यक्त करने की भावना ही काव्य का सृजन कराती है। इस काव्य को प्रभाव की दृष्टि से हम सर्वश्रेष्ठ काव्य कह सकते हैं। कालान्तर में तो इस काव्य का इतना प्रचार हुआ कि "हीर-रांझा" पर सैकड़ों काव्यों की रचना हुई। प्रत्येक कवि अपने आपको तब तक अच्छा कवि नहीं समझता था, जब तक कोई प्रेम-गाथा न लिख ले। ये गाथाएँ कवियों के लिये कवि उपाधि का कारण तक समझी जाने लगीं। पंजाबी साहित्य को इन काव्यों से अत्यन्त ख्याति प्राप्त हुई।

इस काव्य का एक बड़ा गुण गेयता है। इसकी एक विशिष्ट लय है। हीर-रांझा की प्रेम-कथाओं में प्रयुक्त होने के कारण इस लय का नाम भी हीर ही पड़ गया है।

इस काव्य की भाषा सरल है। भावों की तीव्रता के कारण भाषा में एक प्रवाह बना रहता है। भाषा अलंकार आदि के किसी भी प्रकार का चमत्कार दिखाने की अपेक्षा कवि का ध्यान प्रेम की तीव्रता को व्यंजित करने की ओर अधिक रहता है।

दमोदर

आपके जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं चलता। गंगासिंह बेदी की खोज के अनुसार आपका जन्म बल्टारा ग्राम में हुआ था। आपने अपनी रचना हीर में लिखा है कि आप

अपना गाँव छोड़कर झंग सियाल में रहना प्रारम्भ कर दिया था। वहाँ आप एक दूकान किया करते थे :—

नाउँ दमोदर जात गुलाटी, आया सिक सियाली।
वड़िया वंझ चूचक दे शहरे, जिथे सियाल अवदाली।
चूचक वहुँ दिलासा कीता, ताँ दिल होरी लाही।
आख दमोदर रोया दिलासा, हट्टी उथे वणाई।

जैसा कि उपर्युक्त पद्यांश से पता चलता है, आप हिन्दू थे, परन्तु आप पर सिक्ख धर्म का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। गण्डासिंह बेदी का अनुमान है कि आप दूसरी या तीसरी पातशाही के सिक्ख थे। आप स्वभाव से विनम्र थे। आपने अपने आपको विद्वान् नहीं माना है। आपने अपनी आँखों से हीर की प्रेम-कहानी को घटित होते देखा था। उसी से प्रभावित होकर आपने हीर पर प्रेम-काव्य लिखा। आपको जीवन का भी पर्याप्त अनुभव था। आपकी रचना में अनुभव स्थान-स्थान पर प्रकट हुआ है।

मूल्यांकन—आपकी एक ही रचना "हीर" मिलती है। परन्तु रचना से आपकी प्रतिभा पर जो प्रकाश पड़ता है, उससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आपने और भी रचनाएँ लिखी होंगी, जो काल के अन्ध-कूप में छिपी हुई हैं। हीर में हीर-राँझे की प्रेम-कथा वर्णित है। आपका सारा काव्य प्रेम से आप्लावित है। उसमें सहज स्वाभाविक प्रेम का चि-ण है। प्रेम की तीव्रता से काव्य में एक प्रवाह आ गया है। संयो- तथा वियोग दोनों ही प्रकार के चित्र इस काव्य में उपलब्ध होते हैं। भाव-प्रवणता अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है। काव्य का प्रणयन कवि के भावोद्वेग से हुआ है। कवि ने स्वयं हीर-राँझे की प्रेम-कहानी अपनी आँखों से देखी थी। इसलिये

भाव की स्वाभाविकता सर्वत्र विद्यमान रहती है :—

ग्रवरी डिठ्ठा किस्सा कीता, मैं तां गुणी ना कोई।
शौक-शौक उठी दिल मैंडो डा दिल उम्मक होई।

प्रेम के स्वाभाविक रूप का ही चित्रण कवि ने किया है। मिलन की तीव्र लालसा के होते हुए भी कृति में वासना का कोई स्थान नहीं। विरह के ग्रश्रुग्रों तथा प्रेम की पीड़ा का ग्रत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है। हीर राँझे के प्रेम में इतनी मग्न हो जाती है कि स्वयं राँझा बन जाती है तथा फिर ग्रपने को राँझा समझकर हीर को याद करने लगती है :—

उलटी हीर हिये विच राँझा हाल ना जाणे कोई।
राँझा-राँझा करदी नी मैं ग्रापे राँझा होई।
राँझा हीर ते हीर रँझेटो, रती फरक ना कोई।

कवि स्वयं भी युवा था। कहीं-कहीं ग्रत्यन्त सुन्दर हास्य रस की ग्रभिव्यक्ति हुई है। कवि ने राँझा की सुन्दरता क तथा हीर के साहसपूर्ण कार्यों का भी सुन्दर चित्रण किया है ये चित्रण इतने सुन्दर बन पड़े है कि पाठक के हृदय पर सी चोट करते हैं।

काव्य की भाषा ग्रत्यन्त सरल लहँदी बोली है। कहीं-कह फारसी के ग्रत्यन्त प्रचलित शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा प्रवाह है। वाणी ग्रत्यन्त मीठी तथा सरस है। कवि का ग्र कारों के प्रति विशेष ध्यान नहीं रहा है। ग्रलंकार काव्य स्वाभाविक रूप से ही ग्राये हैं। कवि का ध्यान छन्द योज की ग्रोर भी नहीं रहा है। परिणामस्वरूप कहीं-कहीं चरणो मात्राएँ घट-बढ़ जाती हैं।

कविता का सबसे बड़ा गुण गेयता है। भाव की तीव्र

तथा रागात्मकता के कारण प्रगीत-तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। गेयता के कारण ही यह काव्य इतना प्रसिद्ध हुआ कि हीर नाम से एक विशिष्ट लय बन गई। गेयता के आधार पर ही पंक्तियों को तोला गया है।

भाषा में कहीं-कहीं जीवन की सचाई भी अभिव्यक्त हो गई है। ऐसे स्थल की पंक्तियाँ लोकोक्तियों की भाँति प्रसिद्ध हो उठी हैं। एक-दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. घर विच वैर विणग विच चोले,
इह गल बणदी नाही।

२. अग रहे रुई विच कीकण मन्थे इशक जणाया।

इस काव्य का साहित्यिक के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इससे तात्कालिक युग के सामाजिक रीति-रिवाजों, खान-पान आदि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जीवन के सामान्य कार्यों का भी इसमें चित्रण किया गया है।

इस काव्य का सबसे अधिक महत्त्व इस बात में रहा कि इसने अनेक कवियों का पथ-प्रदर्शन किया है। हीर-रांझा नाम से पंजाबी साहित्य में सैंकड़ों रचनाएँ हुई हैं। इन रचनाओं का साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। प्रभाव तथा रागात्मकता की दृष्टि से यह प्रथम कोटि का काव्य है। प्रेम-कथा साहित्य की सर्वप्रथम कृति कवि दमोदर की रचना 'हीर' ही है। वारिसशाह, मुकबल, फज़ल शाह, भगवानसिंह आदि सभी प्रेम-गाथाकारों ने दमोदर की 'हीर' से प्रेरणा ग्रहण की है।

पीलू

पीलू कवि के जीवन के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता।

आपकी एक ही रचना "मिरज़ा साहिबाँ" प्राप्त होती है। बोली के अनुसार इन्हें माझे के पास का रहने वाला माना जा सकता है। कहा जाता है कि गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन के समय पीलू ने अपनी कुछ वाणी गुरु अर्जनदेव जी के सन्मुख रखी, परन्तु गुरु जी ने उसे उपयुक्त न समझकर सम्मिलित नहीं किया।

प्रश्न उपस्थित होता है कि पीलू यदि भक्त था तो उसने प्रेम-कथा काव्य क्यों लिखा? ऐसा प्रतीत होता है कि 'मिरज़ा-साहिबाँ' पीलू के प्रारम्भिक काल की रचना है। बाद में उसके विचार भक्ति की ओर उन्मुख हो गये होंगे। इसके समकालीन कवि हाफ़िज़ बरखुरदार तथा अहमदयार ने इसकी प्रशंसा की है। दोनों की उक्तियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं:—

पीलू नाल बराबरी शाइर भुल करेन।
उहनूं पजा पीरां दी थापना कंघी दसत धरेन।
पीलू नाल ना रीस किसे दी,
उस विच शौक अलहिदी।
मगन निगाह कीती उस पासे,
किसी फ़कीर वली दी।

निश्चय ही यह प्रशंसा उसकी भक्ति-परक रचनाओं के कारण ही की गई होगी, क्योंकि मिरज़ा-साहिबाँ इतनी उत्कृष्ट रचना नहीं है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पीलू की कोई न कोई भक्ति-परक रचना भी थी, जो आज हमें उपलब्ध नहीं है।

मूल्यांकन—मिरज़ा-साहिबाँ पंजाबी साहित्य में सर्वप्रथम पीलू ने ही लिखा है। यह एक दुखांत प्रेम-काव्य है। नायक-

हा की अन्त में मृत्यु से करुण रस उत्पन्न होता है। नायक
हा के भाइयों से घोर युद्ध करता है। इसमें वीर रस का
चित्रण हुआ है। इन दो रसों के अतिरिक्त सारे काव्य
ङ्गार रस की प्रमुखता है। कवि की विशेषता यह है कि
ड़ी से बड़ी बात को अत्यन्त सामान्य शब्दों में कह जाता
हिबाँ की सुन्दरता को दर्शाने वाली एक झलक देखिए:—

साहिबाँ गई तेल नूं, गई पसारी दी हट्ट।
फड़ ना जाणे तक्कड़ी, हाड ना वट्ट।
तेल तुलावे भूला वाणिया, दित्ता शहत उलट।

व्य में संयोग की अपेक्षा वियोग शृङ्गार के चित्र
अच्छे हैं। इन चित्रों में मार्मिकता तथा प्रभावो-
ता अधिक है :—

कड्ढ कलेजा लै गई खान खिवे दी धी।
गज-गज लमियाँ मेढियाँ रंग जो गोरी सी।
जे देवें पियाला ज़हर दा मैं मिरज़ा लैंदा पी।
जे मारे बरछी कससके कदी ना करदा सी।

वि की विशेषता यह रही है कि वह दृश्यों का वर्णन
दरता से करता है। अन्त में मिरज़ा की मृत्यु का दृश्य
मार्मिक तथा करुणाजनक बन गया है। धोखे से मारे
कारण उसके हृदय में इस बात की इच्छा ही रह जाती
ह एक वीर की भाँति न मर सका।

व्य में कई स्थानों पर जीवन की सत्यता पर सुचारु
हुआ है। दो उदाहरण इस प्रकार हैं:—

सट्टो हत्थ ना आउँदी दानशमन्दा दी पत।
मूसा भज्जा मौत तों अग्गे मौत खड़ी।

भाव की तीव्रता होते हुए भी कलात्मकता के ग्रभाव के कारण यह काव्य ग्रधिक सुन्दर नहीं बन पाया है। पंजाब के ग्रामीण जीवन में ही इसका ग्रधिक प्रचार हुग्रा है। गाँव के जाट दर्द-भरी ग्रावाज में लम्बी-लम्बी हूक भरते हुए इसका ऊँचे स्वर में गायन करते हैं।

भाषा इसकी सामान्य है। भाषा में समाहार शक्ति इस काव्य का गुण ही कही जायेगी। ग्रलंकार ग्रादि के प्रति कवि का मोह नहीं रहा। छन्द का निर्वाह भी पूरी तरह से कवि नहीं कर पाया है। हाँ, गेयता इस काव्य में पर्याप्त मिलती है। छन्द-दोष कहीं-कहीं तो गेयता में छिप गया है, पर कहीं-कहीं वह लय में भी व्याघात डालता है। इस काव्य का सबसे बड़ा महत्त्व इसी बात में है कि मिरज़ा-साहिबाँ की कथा को इसने सर्वप्रथम साहित्य में चित्रित किया, जिससे भविष्य के साहित्यकार प्रेरणा लेकर इस विषय पर काव्य-रचना कर सके।

हाफ़िज बरखुरदार

इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं लगता। फ़ारसी में इनके द्वारा लिखी गई एक पुस्तक 'फराइज हिन्द' से पता लगता है कि ये लाहौर में मुसलमान गाँव के रहने वाले थे। इन्होंने स्यालकोट के तरत हजारे के मौलवियों की शिष्यता स्वीकार की थी। कई इतिहासकारों ने इन्हें ग्रौरंगजेब का समकालीन माना है।

इनकी तीन रचनाएँ मानी जाती हैं--(१) ससी-पुन्नू, (२) मिरज़ा-साहिबाँ तथा (३) यूसफ़-जुलेखा। ये तीनों ही प्रेम-कथाएँ दुखान्त हैं। तीनों ही कथाग्रों में प्रेम को पीड़ा तथा विरह की ग्रसह्यता का सुन्दर वर्णन किया गया है।

प्रमुख रस श्रृङ्गार है। इसके साथ ही नायक-नायिका की सुन्दरता के वर्णन में अद्भुत रस भी है। अन्त में नायक-नायिका दोनों की करुणाजनक मृत्यु हो जाने से करुण रस के दर्शन हो जाते है। श्रृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षो का सुन्दर चित्रण हुआ है। तीनों ही कथाओं में भाव की तीव्रता तथा रागात्मकता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। कवि नायिका का सौन्दर्य-वर्णन करता हुआ सुन्दर उपमाएँ देता है। साहिबाँ की सुन्दरता का वर्णन इस पद में देखिए :—

उहदे त्रिखे नैण कटारियाँ, दूसर धावु करन।
जिउँ सूरज साहमणे, लाटाँ नैण मचन्न।

प्रेम मे नायक-नायिका की अवस्था का भी सुन्दर चित्रण किया गया है :—

जिन्हाँ इशक तने विच रचिया, घावु न दीसे अंग।
नीदर भूख ना आवकाँ, उह रहिण ना मीताँ मग।
साहिबाँ मसती चड़ी प्रेम दी, जिउँ मसती चडाई भग।

कवि यूसफ-जुलेखा मे स्त्रियों के प्यार को कच्चा तथा स्वार्थपूर्ण बताता है। कवि पूर्ण रूप से भाग्यवादी है। वह प्रत्येक सुख-दुःख के लिये भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराता है। तीनो ही कथाएँ लोक-गीतों की धुन पर हैं।

भाषा तीनो ही कथाओं की पजाबी है। कहीं-कहीं हिन्दी तथा फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं। कवि अलंकार सम्बन्धी चमत्कार भी दिखाता गया है। यह चमत्कार कवि की प्रतिभा का परिचायक है। भविष्य के कवियों ने भी इस चमत्कार को अपनाया है। छन्दों की दृष्टि से कहीं-कहीं मात्रा-भेद है। पंक्तियाँ लम्बी तथा छोटी हो गई हैं। समस्त काव्य गेय है। छन्द-दोष से

कहीं-कहीं गेयता में भी अन्तर पड़ गया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तीनों ही कथाएँ साहित्यिकता की दृष्टि से सुन्दर हैं।

अहमद

इनके जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ विशेष पता नहीं लगता। इन्होंने हीर-रांझा की कथा बैंत छन्द में सर्वप्रथम लिखी है। इसमें आप अपने को औरंगजेब का समकालीन बताते हैं।

इनके काव्य का सबसे अधिक महत्त्व इस बात में है कि वारिसशाह ने भी इनके काव्य से सहायता ली है। वारिसशाह के काव्य की सारी रूपरेखा इनके काव्य से ही ली गई प्रतीत होती है। काव्य दुखान्त है। प्रेम की तीव्रता, विरह की कठिनता तथा भावोद्रेक इस काव्य में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। रस प्रमुख रूप से शृङ्गार ही है। संयोग तथा वियोग दोनों के ही सुन्दर दृश्य अंकित हुए हैं। परन्तु कवि वर्णनों में अधिक सफलता पा सका है। रांझा जब जोगी होकर रंगपुर में फेरी लगाता है, उसका वर्णन कवि इस प्रकार करता है —

> नजर यार फिरदा विच गोरियां दे,
> घरे जिसनों पाउंदा झातियां नी।
> इक हसदियां, गेडदियां, गावदियां नीं,
> इक वेंदियां धुर घुमारियां नी।

हृदय के भावों का भी सुन्दर चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। रांझा जोगी होकर शहर के बाहर डेरा लगा देता है। हीर उससे मिलने जाती है। मिलन के कारण उसके दर्प का

वर्णन कवि इस प्रकार करता है :—

> सच आख भावी, सानूं गल दिल दी,
> भला नजर आइया सानूं रंग तेरा।
> गई होर ते होर ही हो आइएँ,
> चोले विच ना आउँदा अंग तेरा।

इसके अतिरिक्त अन्त में राँझा को मृत्यु के कारण करुण रस उपजता है। कवि हीर की मृत्यु का वर्णन नहीं करता, केवल राँझा को मृत्यु का ही वर्णन है; पर बाद में दोनों की आत्मा मक्के की ओर जाती हुई बताई है।

काव्य की भाषा ठेठ केन्द्रीय बोली है। कवि ने आवश्यकता के अनुरूप फारसी तथा अपभ्रंश के शब्दों को भी अपनाया है। कवि की वाणी मीठी है। काव्य में सर्वत्र एक प्रवाह है। वर्णन विशेष रूप से सुन्दर बन गये हैं। काव्य में अलंकार आदि की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है; वह केवल अपने भाव की अभिव्यक्ति को ही प्रमुखता देता है। छन्द बैत है, परन्तु पिंगल की कसौटी पर कहीं-कहीं पूरा नहीं उतरता। काव्य का प्रमुख गुण उसकी गेयता है, परन्तु छन्द भंग का दोष कहीं-कहीं गेयता में अन्तर उत्पन्न कर देता है।

हास्य रस का साहित्य तथा कवि

नानक युग में सुथरा तथा जल्हण दो कवि हास्य रस के हुए हैं। कविता करना इनका उद्देश्य नहीं था। अपनी मस्ती में मस्त इन सन्तों ने संसार की कुरीतियों को दूर करने के लिये हास्य-व्यंग्य पूर्ण ढंग से जो उक्तियाँ कही हैं, वे कवित्व से भरपूर होने के कारण साहित्य में स्थान प्राप्त कर गई हैं।

इस साहित्य का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों पर चोट करना ही था। साहित्यिकता की दृष्टि से इसे बहुत सुन्दर काव्य तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु फिर भी यह प्रसिद्धि काफी प्राप्त कर चुका है। मीठी चुटकियाँ होने के कारण लोग इन्हें कण्ठस्थ कर लेते हैं तथा उपयुक्त अवसरों पर बातचीत में इनका प्रयोग करते हैं। यह साहित्य मुक्तक रूप में ही उपलब्ध होता है। इसमें प्रबन्ध या कथा का अभाव है।

सुथरा

इनका जीवन काल सन् १६१५ से १७५५ तक माना जाता है। इस प्रकार इन्होंने १४० वर्ष की आयु भोगी थी। शायद आप से अधिक आयु का कोई अन्य साहित्यकार पंजाबी साहित्य में नहीं हुआ।

कहा जाता है कि इनका जन्म रियासत पटियाला के एक गाँव अडियाले में हुआ था। जन्म से ही इनके मुख में दाँत थे। माता-पिता ने इसे अशुभ समझ कर इन्हें जंगल में फेंक दिया। वहाँ एक कुतिया ने अपने बच्चों के साथ इनका पालन किया। बाद में गुरु हरगोविन्द साहिब ने आपको उठाया तथा पालन-पोषण करवाया। इन्होंने गुरु गोविन्दसिंह जी के भी दर्शन किये थे।

सुथरा जन्म से ही हँसमुख स्वभाव के थे। लोगों का सुधार करने के लिये ही इन्होंने अत्यन्त स्वाभाविक ढग से मीठी चुटकी ली है। इनकी कविता में हास्य रस के साथ सांसारिक बातों से उदासीनता की झलक भी मिलती है। इनकी विशेषता यह है कि ये किसी भी बात को अत्यन्त सरल शब्दों में कह देते हैं।

इनकी भाषा ठेठ होते हुए भी बोलचाल की जन-भाषा है। शब्दों का चुनाव सुन्दर होता है। मुहावरों का भी प्रयोग यथा-स्थान किया गया है। यही कारण है कि इनकी बात का पाठक के हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इनकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. ढोल बजे, घर लुटिओ, लोकी कहिण विआह।
२. आर गगा पार गंगा, विच मैं ते तूं।
लटिणा लैंणा सुथरिया, नासी दे के धूं।

जल्हण जट

जल्हण अमृतसर अटारी के पास के रहने वाले थे। ये सुथरा के समकालीन थे। स्वभाव से ही साधु थे। अपनी मस्ती में ही इन्होंने अत्यन्त सरल भाषा में जो उक्तियाँ कहीं, उन्हें लोगों ने साधु-वचन मान कर याद कर लिया है।

इनकी रचना इनके गुरुद्वारे में रखी हुई है। इनका गुरुद्वारा माझे के किसी गाँव में है। यह ग्रन्थ देवनागरी लिपि में लिखा हुआ है। अब इस को गुरुमुखी लिपि में भी प्रति बनाई जा रही है।

आपकी वाणी में हास्य रस के साथ फकीरी रंग भी पर्याप्त मात्रा में मिश्रित है। अनावश्यक विस्तार आपको

पसन्द नहीं था। सीधी-सादी बात को सीधे-सादे श
कह देना ही आपको पसन्द था। आपकी उक्तियाँ जीव
सत्यता से युक्त होने के कारण लोकोक्तियों की भाँति
के प्रतिदिन के जीवन में व्यवहृत होती हैं। इन्होंने संसा
नश्वरता, वैराग्य, जप-तप आदि विषयों को भी अपनी
पूर्ण उक्तियों में सम्मिलित किया है। इनकी रचना के
उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. *मिके हुंदे ढग्गे चारे, वडे होये हलवाया।*
   बुढे होके माला फेरी, रब दा उलांभा लाया॥
२. *खाये कणक ते पहिने पट,*
   उथे की करेगा जल्हण जट।
३. *जल्हिया रब दा की पाउणा।*
   इधरों पुटणा उधर लाउणा॥

गद्य साहित्य

संसार के प्रत्येक साहित्य में पहले कविता की रच
होती रही है, बाद में गद्य का आविर्भाव हुआ है। पंजा
साहित्य के सम्बन्ध में भी यही तथ्य लागू होता है।

गद्य के उत्थान के लिये दो बातों की आवश्यकता हो
है—(१) बौद्धिक विवेचना का विकास तथा (२) मुद
यन्त्र की उपलब्धि। गद्य तथा पद्य दोनों की विशेषताएँ भि
भिन्न हैं। पद्य में भावात्मकता, रागात्मकता का प्रदर्शन ह
सकता है, परन्तु बौद्धिक विवेचन सम्भव नहीं है। जैसे-जै
मानव समाज वैज्ञानिक उन्नति करता जाता है, उसे वैज्ञानि
नियम-उपनियमों की स्थापना करनी पड़ती है। जैसे-जै
तर्क की प्रधानता होती जाती है, मनन-चिन्तन भी बढ़ता

जाता है। यह मनन-चिन्तन दार्शनिक विवेचना के लिये तो अनिवार्य ही हो जाता है। संसार के सभी साहित्यों में पहले मानव भावात्मक ही रहा है, परन्तु धीरे-धीरे वह तार्किक होता गया। उसने दार्शनिक मनन-चिन्तन भी प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि संसार के सभी साहित्यों में पहले पद्य साहित्य तथा फिर गद्य साहित्य का आविर्भाव हुआ। परन्तु इसका अर्थ यह न समझ लेना चाहिए कि पहले मानव गद्य से परिचित ही नहीं था। जीवन के नित्य-प्रति के कार्यों में गद्य का ही व्यवहार होता था। परन्तु साहित्य-सर्जना के लिए पद्य का ही प्रयोग होता था।

गद्य के विकास में मुद्रण यन्त्र की उपलब्धि भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। कारण यह है कि पद्य को कण्ठस्थ किया जा सकता है, जबकि गद्य को कण्ठस्थ करना अत्यन्त कठिन बात है। पहले मुद्रण यन्त्र न थे। प्रत्येक विषय पद्यबद्ध करके हाथ से लिखा जाता था। उसकी एक-दो प्रतियां बना ली जाती थी तथा विद्यार्थियों को कण्ठस्थ करा दी जाती थीं। परन्तु जैसे ही मुद्रण यन्त्र का आविष्कार हुआ, पुस्तकों की अनेक प्रतियां छपने लगी। प्रत्येक विद्यार्थी को पुस्तक प्राप्त करने की सुविधा मिली। परिणामस्वरूप जो विषय गद्य के अभाव में पूर्ण रूप से विकसित न हो पाये थे, या गद्य के अभाव में जिनका मनन कठिन हो रहा था, वे सभी गद्य मे लिखे जाने लगे।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पुरातन काल में मानव अधिक श्रद्धावान था। उसमें तार्किक बुद्धि इतनी विकसित नहीं हुई थी। परन्तु कालान्तर में वह तार्किक तथा मनन-शील अधिक होता गया तथा आज तो उसने अपनी इस शक्ति

को इतना विकसित कर लिया है कि वह प्रत्येक बात को जब तक अपनी आँखों से प्रत्यक्ष न देख ले, मानता ही नहीं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इन दोनों कारणों से ही गद्य का जन्म तथा विकास किसी भी साहित्य में हुआ है।

पंजाबी में भी धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों ने गुरमत के सिद्धान्तों की व्याख्या की अथवा गुरुवाणी को लिखित रूप दिया अथवा गीता आदि अन्य धर्म-पुस्तकों को जन-भाषा में प्रस्तुत किया, तो गद्य साहित्य का जन्म हुआ।

इस प्रकार नानक युग मे तीन रूपों में गद्य साहित्य की उपलब्धि होती है—(१) जन्म साखियाँ, (२) गोष्टियाँ तथा (३) अनुवाद। इस गद्य साहित्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पूर्व भी गद्य में रचनाएँ हुई होंगी। परन्तु आज वे सभी अतीत के गर्भ में विलीन हो चुकी हैं। अब हमें इस युग मे ही जो गद्य रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, उन्ही से सन्तोष करना पड़ता है। इस काल का गद्य साहित्य इस प्रकार है :—

साखियाँ—(१) पुरातन जनम साखी। इसकी एक प्रति मैकालिफ के पास है तथा एक प्रति लन्दन के पुस्तकालय में रखी हुई है।

(२) भाई विधिचन्द वाली साखी। यह साखी सन १६४० ई० मे लिखी गई।

(३) 'तोह' आदि साखियाँ जिनमें से एक अकबर को भी सुनाई गई थी।

(४) भाई बाले वाली जनम साखी, जो गुरु गोविन्दसिंह जी के समय में लिखी गई थी।

गोष्टियाँ—ये वार्त्तालाप के रूप में लिखी गई हैं। इनमें नाटकीयता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। ये गोष्टियाँ गुरु

नानकदेव जी की अनेक व्यक्तियों के साथ मिलती है। एक गोष्टि बावे लाल की दारा शिकोह के साथ भी मिलती है। इनमें प्रयुक्त नाटकीयतापूर्ण दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. घर फकीर दा किहड़ा ? सारा जगत।

२. दुशमण फकीर दा किहडा ? आपना मन।

टीकाएँ तथा फुटकल रचनाएँ—ये टीकाएँ कुछ धार्मिक पुस्तकों की व्याख्या प्रस्तुत करती है। इनके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों के अनुवाद भी किये गये तथा कुछ वर्णनात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गई :—

१ जप परमारथ।

२. हाजर नामा।

३. सिध गोष्ट दीयाँ टिप्पणीयाँ।

४. प्रहलाद तथा उपनिषदों के अनुवाद।

५. छज्जू भगत दा गीता महातम आदि।

इस गद्य साहित्य में सबसे सुन्दर गद्य रचनाएँ साखियों को कहा जा सकता है। परन्तु फिर भी इसमें विवेचन की शक्ति अभी नहीं आ पायी थी। एक प्रकार से यह कविता ही थी, जिसमें छन्द तथा यति आदि का नियम नहीं था। वाणी कविता की ही भाँति मीठी है। अनावश्यक विस्तार भी कम ही है। गद्य में एक प्रवाह है। गद्य के स्वरूप को देखते हुए यह कहना अनुचित नहीं कि इससे पहले भी गद्य में रचनाएँ हुई होंगी। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

'इक दिन पंजाब की धरती करतार पुरी बैठा था। अर दरगाह प्रमेशवर बुलाया ते इह हुक्म आया ए इस जहान विच तब इकसा अंगद सिख बुलाय के गुरु बाबे नानकजी किहा जो अंगदा पारब्रहम की आगिया होई है जो सिफत करनी।'

उत्तर मुगल काल

पंजाबी साहित्य में सन् १६०० से १८०० ई० तक
को उत्तर मुगल काल की संज्ञा दी जाती है। इस युग में
युग के साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी
आमूल परिवर्तन हुए। इन सभी परिवर्तनों को हम इस
दिखा सकते हैं :—

राजनीतिक—सन् १७०७ ई० में औरंगजेब की मृ
गई। औरंगजेब की मृत्यु से मुगलों के शासन को व्य
छिन्न-भिन्न हो गई। केन्द्रीय शासन शिथिल हो गया। शै
शिथिल होने के साथ-साथ रही-सही शक्ति राज्य प्राप्ति
इच्छुक राजकुमारों के गृह-युद्धों में समाप्त हो गई।
एक ओर मराठों ने शक्ति प्राप्त करके मुगल राज्य के
पर धीरे-धीरे अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया, तो दू
ओर विभिन्न प्रान्तों के सूबेदार अपने को स्वतन्त्र घोषित
लगे। परिणामस्वरूप मुगल शासन की कमजोरी को पहचान
भारत पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ। नादिरशाह के प
अहमदशाह अब्दाली के अनेक आक्रमण हुए। ये सभी आक्र
पंजाब के रास्ते ही हुए थे। इन आक्रमणकारियों ने मु
तथा मराठों की शक्ति को विशेष रूप से समाप्त कर दि
पंजाब की जनता पर भी उन्होंने अमानुषिक अत्याचार कि

दूसरी ओर सन् १७०८ ई० में गुरु गोविन्दसिंह जी
देहावसान हो गया। इससे सिक्खों में भी शिथिलता आने ल
वीर बन्दा बैरागी के नेतृत्व में वे कुछ वर्ष तक मुगलों से लो
लेते रहे; परन्तु बन्दा बैरागी को छल से पकड़कर क्रूरतापू
मरवा दिया गया। विभिन्न मुगल शासक चाहे स्वतन्त्र हो
थे, परन्तु हिन्दुओं के प्रति उनमें वैमनस्य पूर्ववत् ही

विशेष रूप से सिक्खों को तो वे हर सम्भव कष्ट देना अपना धार्मिक कृत्य समझते थे। लाहौर का सूबेदार तो विशेष रूप से क्रियाशील था। सिक्खों की इसी स्थिति का संकेत इस कहावत में मिलता है :—

मन्नू साडी दातरी, असी मन्नू दे सोए।
जिउँ जिउँ सानूँ वडदा, असी दून सवाये होये।

परन्तु सिक्खों की यह अवस्था बहुत अधिक समय तक न रही। सिक्ख धीरे-धीरे मिसलों में बँट गये। १२ मिसलें बनीं तथा मिसलों के रूप में सिक्खों ने अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया। मुगल शासक भी धीरे-धीरे शक्तिहीन होते गये।

सामाजिक—इस सम्पूर्ण युग में सामाजिक स्थिति अत्यन्त अशान्त रही। मुगलों की केन्द्रीय शक्ति के शिथिल पड़ जाने से जहाँ गृह-कलह ने अशान्तिपूर्ण वातावरण को जन्म दिया, वहाँ विभिन्न प्रान्तों के मुसलमान शासकों ने भ हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। गुरु गोविन्दसिंह तथा बन्दा बैरागी के देहान्त के पश्चात् सिक्खों में कोई ऐसा व्यक्ति न बच पाया था, जो बिखरी तथा शिथिल हो रही सिक्ख जाति को एकत्रित करके अन्यायी तथा अत्याचारी मुगल शासकों का सामना कर सके।

दूसरी ओर धन के लालची लुटेरे नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने जनता की अवस्था अत्यन्त शोचनीय कर दी थी। ये लुटेरे जनता के धन तथा सम्मान दोनों को तो लूटते ही थे, साथ ही अमानुषिक अत्याचार भी करते थे। निरीह जनता का वध करके वे अपने को वीर समझते थे। देश की इस दशा को इस उक्ति में प्रकट किया गया है :—

खाधा-पीता लाहे दा, रहिंदा अहमद शाहे दा।

ये आक्रमणकारी हिन्दू या मुसलमान का अन्तर नहीं करते थे। इनके सामने जो भी पड़ जाता था, उसे ही अपनी पाशविक लिप्सा का शिकार बनाते थे। देश तथा समाज की ऐसी अवस्था मे जनता में बहुत ही अशान्ति, अस्थिरता तथा उद्वेग व्याप्त था। परन्तु जैसे-जैसे सिक्ख ज़ोर पकड़ने लगे, सिक्खों की मिसलें पंजाब के विभिन्न भागों पर अधिकार करने लगीं; पंजाब की अवस्था सुधरने लगी।

साहित्यिक—देश की इस राजनीतिक तथा सामाजिक अशान्ति की दशा मे भी अनेक प्रकार का साहित्य रचा गया। गुरु गोविन्दसिंह जी के पश्चात् गुरु-परम्परा समाप्त हो जाने के कारण गुरमत का साहित्य आगे न लिखा जा सका। इसके साथ ही धार्मिक या दार्शनिक विवेचन से पूर्ण साहित्य के लिए भी यह समय उपयुक्त न होने से इस प्रकार की रचना नहीं हुई। हाँ, सूफियों के द्वारा साहित्य-सर्जना का कार्य पूर्ववत् होता रहा, परन्तु उसमें भी वह पहले वाली बात नहीं रही थी। पहले वाला उत्साह तथा प्रेम की मस्ती अब उसमें विद्यमान न थी। सूफी सन्त भी अपनी मस्ती की प्राप्ति अलौकिक प्रेम से न करके भंग-भवानी की सहायता से कर रहे थे। मुगल राज्य के पतन से उनमे एक निराशा तथा खीभ भर गई थी। उनकी यह खीभ जब भंग-भवानी भी शान्त करने मे असमर्थ रहती थी, तो यही खीभ साहित्य में अभिव्यक्त हो जाया करती थी।

साहित्य की प्रशंसनीय अभिवृद्धि इस काल में प्रेम-कथाकारों के द्वारा हुई। वारिसशाह का हीर पंजाबी साहित्य में एक ऐसी रचना इस युग में हो गई है, जिसने पंजाबी साहित्य का मस्तक सदा के लिये उन्नत कर दिया। वारिसशाह के अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रेम-कथाकार इस युग में हुए हैं। ये

सभी कथाकार मुसलमान थे। इन सभी के साहित्य में मुगल राज्य के पतन से उत्पन्न क्षोभ, निराशा तथा सिक्खों के उत्थान पर आक्रोश के भाव पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

इन प्रेम-कथाकारों के अतिरिक्त इस युग में वीर रस पूर्ण वार-साहित्य भी लिखा गया है। इस क्षेत्र में नजावत ने जितनी ख्याति प्राप्त की, उतनी अन्य किसी को न मिल सकी। इन विभिन्न धाराओं के साथ-साथ पुरानी भक्ति-साहित्य की धारा भी इस युग में मन्द रूप से चलती रही; परन्तु कोई विशेष साहित्य इस धारा में नहीं रचा गया है। पद्य-काव्य में कुछ ऐसे भी काव्य लिखे गये, जिन्हें हम उपर्युक्त वर्णित किसी भी विभाग में नहीं रख सकते। सुविधा के लिये इन्हें गीति-काव्य कहा जा सकता है। बहुत सुन्दर साहित्य तो यह नहीं कहा ज सकता, पर फिर भी प्रकृति चित्रण तथा रागात्मकता की दृष्टि से यह साहित्य खासा बन गया है। परन्तु इस साहित्य को पंजाबी भाषा का साहित्य मानने में अनेक विद्वानों को आपत्ति रही है कारण यह है कि इस साहित्य में पंजाबी के कुछ शब्द तो अवश्य मिल जाते हैं, परन्तु सम्बन्ध-तत्त्व तथा क्रिया रचना इसे हिन्दी के अधिक निकट ले जाती है। हमारे विचार में भी इसे पंजाबी साहित्य में स्थान न देना ही अधिक न्यायोचित है।

गद्य के क्षेत्र में पूर्व युग में जो गद्य का रूप था, वह इ युग में आकर परिष्कृत होने लगा। मनीसिंह तथा अड्डनशा दो प्रौढ़ गद्य लेखक इस युग में उत्पन्न हुए। इस युग में गद्य व जो उन्नति हुई, वह वास्तव में सराहनीय है। संक्षेप में इ युग के साहित्य को हम इस प्रकार दिखा सकते हैं :—

१. सूफी कविता।
२. प्रेम-कथा काव्य।

३. वार-साहित्य।
४. भक्ति-साहित्य।
५. गद्य-साहित्य।

सूफी काव्य तथा कवि

उत्तर मुगल काल में अनेक सूफी कवि हुए हैं। बुल्लेशाह, अली हैदर, वजीद, फरद फकीर, दाना आदि के नाम इस सम्बन्ध में गिनाये जा सकते है, परन्तु विशेष ख्याति बुल्लेशाह को ही प्राप्त हो सकी। इस काल के सभी सूफी कवियों में पहले जैसी प्रेम की मस्ती नहीं रही थी। धर्म-परायणता भी बहुत कम मात्रा में ही उपलब्ध होती है। भावात्मकता, सरलता तथा भाव की तीव्रता के होते हुए भी साधना के अभाव में उनमें वह शक्ति नहीं थी, जो फरीद शकर गंज आदि सूफी कवियों की वाणी में उपलब्ध होती है।

इस साहित्य में मुगल राज्य के पतन से व्याप्त निराशा और चिन्ता तथा सिक्खों के उत्थान से उत्पन्न खोज उपलब्ध होती है। इस साहित्य की तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि प्रायः सभी धर्मों का प्रभाव इसमें देखा जा सकता है। निजी साधना के अभाव में अन्य धर्मों का इन सूफी कवियों पर जो प्रभाव पड़ा, वह कविता में भी अभिव्यक्त हुआ है। सिक्ख मत, वेदान्त, वैष्णव वाद, योग दर्शन, नाथ आदि कुछ ऐसे मत हैं, जिनका प्रभाव इनकी कविता पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिये इस काल के सूफियों की कविता में व्याप्त गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करने की भावना, गुरु की ओट को साधना के लिये आवश्यक समझना, सिक्ख धर्म का प्रभाव है। इसी प्रकार ईश्वर तथा आत्मा की अभेदता व संसार को छाया मात्र समझना अद्वैत वेदान्त, जो बाहर है वही अन्दर

है तथा अनहद नाद सुनना योग दर्शन, ईश्वर के प्रेम में पत्नी की भाँति मस्त होकर नाचना-गाना वैष्णव वाद का प्रभाव कहा जा सकता है।

इस साहित्य की चौथी विशेषता यह है कि इसमें प्रतीकात्मक शब्द तथा अप्रस्तुत विधान अभारतीय ग्रहण न करके पंजाब के जीवन से ही ग्रहण किया जाने लगा था। चरखा, कुम्रां, हीर-राँझा जैसे सामान्य जीवन में प्रचलित शब्दों को ही अपनाया गया है।

इस काव्य की भाषा मूल रूप में तो पंजाबी ही है, पर उसमें अरबी, फारसी, हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का ऐसा मिश्रण किया गया है कि भाषा खिचड़ी बन गई है। भाषा में समाहार शक्ति का भी अभाव है। वाणी की मिठास तथा प्रवाह, ये दो गुण इस साहित्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। बुल्लेशाह की काफ़ियाँ इस युग के सूफी साहित्य में विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर गई हैं।

बुल्लेशाह

बुल्लेशाह का जीवन-काल सन् १६८० से सन् १७५८ ई० तक माना जाता है। इनका जन्म लाहौर में हुआ था, परन्तु इन्होंने जीवन का अधिकांश भाग कसूर में बिताया था। आपने स्वयं लिखा है :—

बुल्लेशाह दा वसण कसूर, जिथे रब्बी-रब्बी सजूर।

इन्हें ईश्वर के प्रति लगन अपने पिता से ही मिली थी। कहा जाता है कि इनके पिता भी उच्च कोटि के सन्त थे। इनके पिता का नाम मुहम्मद दरवेश था। इन्होंने गुरु की खोज में काफी समय बिताया था। अन्त में इन्होंने पीर इनायतशाह

लाहौरी की शिष्यता स्वीकार कर ली। सूफ़ियों में ईश्वर के रहस्य को खोलना वर्जित है। गुरु ने ईश्वर का ज्ञान इन्हें देते हुए उसे किसी से न कहने के लिए सावधान किया, परन्तु अपनी मस्ती में ये इस बात को भूलकर स्वच्छन्द गाने लगे। पीर साहिब अत्यन्त क्रुद्ध हुए तथा इन्हें वहाँ से निकाल दिया गया। अन्त में इन्होंने नाचना सीखा तथा एक दिन जब पीर साहिब मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहे थे तो इन्होंने भीड़ जमा करके ऊँचे स्वर में गाना तथा नाचना प्रारम्भ कर दिया :—

> बहुड़ी वे तबीबा, मेरी जिन्द गिया।
> तेरे इशक़ नचाया, कर थैया-थैया।

पीर साहिब ने जब यह सुना तो बाहर आकर इन्हें गले लगाते हुए पूछा—'तोए तूं बुल्ला है?' इन्होंने अत्यन्त नम्रता तथा प्रेम भरी वाणी में उत्तर दिया, 'नहीं हज़ूर मैं भुल्ला हाँ।' पीर जी ने इन्हें क्षमा कर दिया। ७३ वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हो गया। इनका मज़ार कसूर में ही बना हुआ है।

इन्होंने अठवारे, काफ़ियाँ, बारा-माह, सीहरफ़ियाँ तथा दोहे भी लिखे हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध काफ़ियाँ हैं। इनकी रचना पंजाब विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति क्रमांक ३३४ में सुरक्षित है।

मूल्यांकन—सूफ़ी कवियों में बुल्लेशाह का सबसे ऊँचा स्थान है। इनको काफ़ियाँ लिखने में पर्याप्त सफलता मिली है। विषय ईश्वर दर्शन ही है परन्तु इन पर अनेक मतों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए गुरु की महत्ता एवं उनकी उपस्थिति को ही सर्वप्रमुख मानना सिक्ख मत का, पिण्ड को ब्रह्माण्ड मानना तथा आत्मा-परमात्मा की एकता में विश्वास अद्वैत वेदान्त का, ईश्वरीय प्रेम में स्त्री-भाव से सार

होकर नाचना-गाना वैष्णव मत का, जो बाहर है वही भीतर है, वायु निरोधन आदि योग दर्शन का प्रभाव कहा जा सकता है।

सूफी मत का प्रेम-भाव इनके काव्य में पर्याप्त मिलता है। इनके मत मे प्रेम का मार्ग ही ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग है। ईश्वर को प्रेम-स्वरूप मानकर जीव को सेवक रूप में रहना चाहिए, सेवा के अतिरिक्त उसी के स्वरूप का ध्यान तथा उसके प्रेम की मस्ती में झूमना चाहिए। प्रेम में अभेदता ही सच्चे प्रेम की पहिचान है :—

रांझा-रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई।
सदो नी मैनूँ रांझा, हीर ना आखो कोई।

इस प्रेम में गुरु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गुरु की प्रसन्नता के बिना ईश्वर का प्रेम प्राप्त ही नहीं हो सकता। आपके काव्य मे सूफी धर्म की भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्ति हुई है :—

१. हाजी लोक मक्के नू जांदे, असां जाणा तख्त हजारे।
जित वल यार उसे वल काबा, भावें वेख कताबां चारे।
२. शरीयत साडी दाई है, तरीकत साडी माई है।

आपके काव्य मे भावप्रवणता तथा रागात्मकता भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है, परन्तु अनुभूति की तीव्रता कहीं-कहीं ही मिलती है। इसलिए पाठक के हृदय पर इस काव्य का मार्मिक प्रभाव इतना नहीं पड़ता, जितना फरीद शकर गंज के काव्य का पड़ता है। फिर भी कहीं-कहीं तो भाव की तीव्रता तथा स्वाभाविकता अच्छी बन पड़ी है :—

१ आवें आप ना आण वे, वेहड़े आवड़ मेरे।
मैं तेरे कुरबान वे, वेहड़ा आ वड़ मेरे।
२ बहुड़ी वे तबीबा मेरी जिन्द गिया।
तेरे इशक नचाया, कर थैया-थैया॥

इनके काव्य में फारसी उपमान तथा प्रतीक विधान के स्थान पर पंजाब के सामान्य जीवन से गृहीत उपमान तथा प्रतीक विधान अपनाया गया है—गुल, बुलबुल, शराब आदि के स्थान पर चरखा, विवाह, कुर्ता, हीर-रांझा, मायका आदि को अप्रस्तुत विधान के लिए अपनाया गया है। भाषा में लहँदी, फारसी, अपभ्रंश, हिन्दी के शब्दों का मेल है। एक प्रकार से भाषा खिचड़ी बन गई है। जहाँ तक वाणी की मिठास का प्रश्न है, बुल्लेशाह की कविता में यह गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों का मेल होने पर भी इसमें कठिनता नहीं आने पायी है। सरल तथा सादे शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा में समाहार शक्ति का अभाव है। विस्तार अधिक है। छन्दों में आपने प्रमुख रूप से काफियाँ लिखी हैं, परन्तु वे पूरी नहीं उतरतीं। दोहे भी आपने लिखे हैं, परन्तु छन्द का या तो आपको ज्ञान नहीं था या छन्द-विधान की ओर आपका ध्यान नहीं था, क्योंकि उनमें भी मात्राओं में अन्तर पड़ जाता है।

अनेक विद्वान् आपकी कविता के विकास-क्रम को तीन भागों में बाँटते हैं। इन विद्वानों में प्रमुख रूप से डॉ० लाजवन्ती का नाम लिया जा सकता है।

१. पहली विकास अवस्था में कवि को सूफी सिद्धान्तों का ज्ञान होता है। वह स्वर्ग, नर्क, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है :—

इक रोज़ जहानो जाणा है, जां कबरे विच समाणा है।

२. दूसरी अवस्था में उस पर भारतीय वैष्णव वाद, योग दर्शन इत्यादि का प्रभाव पड़ता है :—

इक अँधेरी कोठड़ी दूजा दीवा ना वत्ती।
बाहों फड़के लै चले, शाम वे, कोइ संग न साथी।

३. तीसरी अवस्था में बुल्लेशाह अपनी मस्ती में ही रहता है। इस अवस्था को रहस्यवाद की अवस्था भी कहा गया है। आपको हर धर्म एक-सा ही प्रतीत होता है:—

बन्दराबन में गऊ चरावें, लंका साड़ के नाद बजावें।
मक्के दा बण हजियावें, वाह-वाह रंग वटाई दा।

इस प्रकार बुल्लेशाह को एक श्रेष्ठ सूफी कवि कहा जा सकता है। वैत छन्द में उसे काफी सफलता मिली। पंजाब की जनता में ये काफियाँ मौखिक परम्परा में प्रचलित हैं। परन्तु यह कवि धर्म निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता। मुगल राज्य के पतन का इसे दुःख था तथा सिक्खों की उन्नति पर क्षोभ:—

भूरियाँ वाले राजे कीते,
मुगलाँ जहर पियाले पीते।

अली हैदर

इनका जीवन काल सन् १६६० से सन् १७७७ तक माना जाता है। इस प्रकार ८७ वर्ष की लम्बी आयु आपको प्राप्त हुई थी। आपका जन्म मुलतान जिले के चौतरा गाँव में हुआ था। आप बड़े विद्वान् थे। इससे अधिक आपके जीवन के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता।

पंजाबी में आपकी रचना पंज-सीहरफियाँ मिलती है। आप नाशवान शरीर की निन्दा नहीं करते। आपके मत से यह शरीर परमात्मा का स्थान है। आपने जीव को आलस्य छोड़ कर अपने आपको पहचानने की प्रेरणा दी है। परमात्मा की प्राप्ति में आप मन के अहंकार भाव का नाश भी आवश्यक मानते हैं। कहीं-कहीं आत्मा-परमात्मा में अभेदता का भी वर्णन करते हैं। ईश्वर को ही आप सब कुछ करने वाला मानते

है। भाग्यवाद पर आपको पूरा भरोसा है। परमात्मा की प्राप्ति में आप बुल्लेशाह तथा फरीद शकर गंज के समान सब प्रकार के बन्धनों को तोड़ने की प्रेरणा देते हैं :—

नाले शरम हया दी लज रखें,
नाले नैन नैनां नाल जोड़नी एं।
दिल चाहुँदा ई गले लगणे नूं,
[illegible] मुख मोड़नी एं।

[illegible] रूप में अपनाकर सूफी [illegible] है। [illegible] के रूप में दोनों को [illegible] का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन तथा [illegible] वर्णित किया है।

[illegible] कम है। भाव की तीव्रता तथा [illegible] इनमें बहुत कम है —

[illegible] तां सेडडे हथ चिकावनीआं।
[illegible] रो-रो धावे पावनियां॥

साहित्यिकता की दृष्टि से इनकी कविता को बहुत सुन्दर नहीं कहा जा सकता। भाव की जो तीव्रता तथा रागात्मकता फरीद शकर गंज इत्यादि की कविता में उपलब्ध होती है, इनकी कविता में बहुत कम मिलती है। भाषा की समाहार शक्ति तथा कलात्मकता भी कम ही है। विस्तार अधिक है।

भाषा इनकी केन्द्रीय पंजाबी है। लहँदी का केवल प्रभाव मात्र ही प्रतीत होता है। उपमान तथा प्रतीक विधान आपने सामान्य जीवन से ही ग्रहण किया है। आप पिंगल का सफल प्रयोग कर पाते हैं। ताटंक छन्द का प्रयोग किया गया है।

इनके अतिरिक्त कवि को नादिरशाह के द्वारा किये गये [illegible] प्रति दुःख है। कई स्थानों पर यह दुःख अत्यन्त

है। कवि की रचना को अधिक सुन्दर तो नहीं कहा जा
ता, परन्तु फिर भी कहीं-कहीं सौन्दर्य अच्छा बन
है।

वजीद

इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं चलता।
इन्हें जालन्धर का निवासी मानते हैं। कुछ का विचार है
ये काबुल में उत्पन्न हुए थे। वहीं सेना में एक सरदार के
पर नियुक्त थे। हिन्दू भक्तों के संसर्ग से इनकी रुचि
न की ओर हुई। ये भारत में आये, यहाँ अनेक तीर्थों की
की तथा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का मनन किया। परन्तु
मत का कोई विशेष आधार नहीं मिलता।

इनकी कविता का विषय है कि मानव ईश्वर की इच्छा
सम्मुख कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर सर्वशक्तिमान है,
वह जो चाहता है वही करता है। परन्तु कवि के भाव
विरोध नहीं है। कवि सूफी मत से सम्बद्ध है। वह केवल
र की लीला को ही बताना चाहता है। स्वभाव से हास्य-
होने के कारण वह जो कुछ कहना चाहता है, उसे
वीय व्यंग्य का रूप दे देता है। इनकी रचना तथा सुथरा व
ण की रचना में इतना ही अन्तर है कि उनका व्यंग्य मानव
नि होता था, परन्तु वजीद का हास्य ईश्वर के कार्य
थे।

कविता अत्यन्त स्वाभाविक तथा सामान्य जीवन के भावों
त-प्रोत है। कविता की भाषा ठेठ है। वर्णन इस प्रकार के
सामान्य व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है। इन
चना के एक-दो उदाहरण इस प्रकार हैं:—

१. इकना नूं ढिड, गंड, ना मैदा भावई।
बहुती बहुती माया चली आवई।
इकना नाही साग अलूणा पेट भर।
वजीदा कौन साहिब नूं आखे, इज नहीं इंज कर।
२—मूरख नूं असवारी हाथी घोड़ियाँ।
पंडत, पीर, पियादे, पाटे जोड़ियाँ।
करदे सुघड़ मजूरी मूरख दे जाय घर।
वजीदा कौण साहिब नूं आखे इंज नहीं इंज कर।

प्रेम कथा-काव्य तथा कवि

पंजाबी साहित्य में इस काल में तीन ही प्रेम कथाकार कवि हुए हैं—वारिसशाह, मुकबल तथा हामद। इन कवियों ने पुराने विषय पर ही कथाएँ लिखी हैं, परन्तु विषय, रस, वर्णन तथा शैली सभी बातों में पूर्वापेक्षा अन्तर होने के कारण पुनरावृत्ति सी प्रतीत नहीं होती।

इस काल के कवियों ने कल्पना का पर्याप्त प्रयोग किया है। परिणामस्वरूप इस काल की कथाओं में अस्वाभाविकता का दोष बहुत हद तक कम हो गया है। उदाहरण के लिए यदि दामोदर तथा वारिसशाह दोनों की कथाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो दामोदर के काव्य में अस्वाभाविकता अधिक मिलती है। जैसे कि हीर को अत्यन्त वीर तथा अक्खड़ स्वभाव का दिखाना। परन्तु वारिसशाह ने नारी के स्वभाव को पहचानते हुए हीर के स्वभाव से अक्खड़पन तथा वीर भाव को काफी कम कर दिया है।

इस काल की कथाओं की दूसरी विशेषता यह है कि कवियों ने कल्पना के प्रयोग के साथ स्वाभाविकता का भी

प्ति ध्यान रखा है । स्वाभाविकता की रक्षा के लिए उन्होंने
नोवैज्ञानिकता का भी प्रयोग किया है । पहले की कथाओं में
हुत-कुछ परिवर्तन करके प्रस्तुत किया गया है ।

इस काल के कवियों को जीवन का अनुभव भी कुछ
धिक था । उनका यह अनुभव जहाँ काव्य में जीवन के अंश
अधिक सजीव कर पाया है, वहाँ काव्य में कुछ विस्तार
अधिक आ गया है ।

इस काल के काव्य में तात्कालिक समाज के चित्रण पर
प्त ध्यान दिया गया है । यह युग एक प्रकार से अशान्ति
युग था । आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही प्रकार के युद्ध देश
ल रहे थे । इन सभी का चित्रण इन काव्यों में यथा-स्थान
है ।

इसके अतिरिक्त इन काव्यों की ओर भी विशेषताएँ हैं,
हरणार्थ नाटकीयता, प्रवाह, वर्णन की सजीवता, भाव की
ता तथा मार्मिकता, रागात्मकता, भाषा की सरलता,
ी की मिठास, नित्य जीवन में प्रयुक्त शब्दों का चुनाव,
ल की उपयुक्तता, लय-विधान तथा कलात्मकता इत्यादि
सभी गुणों के कारण यह साहित्य इतना सुन्दर बन पड़ा
पंजाबी साहित्य में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को
र गर्व है । आज भी लोग हीर की तानों में अपने मन के
का चित्र देख-देख कर झूमा करते हैं ।

वारिसशाह

ारिसशाह का जीवन काल सन् १७३० ई० से सन् १७९०
माना जाता है । इनके पिता का नाम सैयद गुलशेर शाह
ाप जिला शेखूपुरा के जंडियाला नामक ग्राम में हुए थे ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई थी। बड़े होने पर आप कसूर चले गये तथा वहाँ मखदूम कसूरिये से शिक्षा प्राप्त की।

कहा जाता है कि जब विद्याध्ययन के पश्चात् ये अपने घर लौट रहे थे तो मार्ग में एक गाँव ठट्ठा जाहद में इनका भागवती नाम की एक हिन्दू स्त्री से प्रेम हो गया। गाँव वालों को जब इस बात का पता चला तो इनको गाँव छोड़ कर भागना पड़ा। प्रेम की पीड़ा से दग्ध हृदय ले कर ये मलका नाम के एक गाँव में ठहरे तथा वहीं पर इन्होंने हीर नाम का प्रसिद्ध प्रेम-कथा काव्य लिखा। इनके नाम पर अन्य रचनाओं का उल्लेख भी किया जाता है, परन्तु इनका उक्त काव्य ही इनकी ख्याति का मुख्य आधार रहा है। विद्वान् केवल इसी काव्य को इनके द्वारा सृजित स्वीकार करते हैं।

मूल्यांकन--वारिसशाह की हीर का विषय वही पुराना है। दामोदर कवि इसी विषय पर पहले ही लिख चुका था। वारिसशाह ने इस पुराने विषय को ही इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है कि आज 'हीर' नाम की रचना वारिसशाह के नाम से ही प्रसिद्ध है। वारिसशाह ने कल्पना का प्रचुर प्रयोग करके कथा में स्वाभाविकता तथा मनोरंजकता उत्पन्न कर दी है। दामोदर की हीर में बहुत-सी बातें अस्वाभाविक लगती हैं। परन्तु वारिसशाह की हीर में ये अस्वाभाविकताएँ कम हैं। कथा के अन्त को मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान किया गया है।

वारिसशाह को जीवन के विभिन्न अंगों का गहरा अनुभव था। वह इस अनुभव को भी कथा में यथा-स्थान अभिव्यक्ति देता रहा है। उदाहरण के लिए हीर को साँप काट लेता है। उसकी औषधि का वर्णन करते हुए वारिसशाह सारी वैद्यक

ही खोलकर रख देता है। इससे कथा में अनेक स्थानों पर अनावश्यक विस्तार आ गया है। कई स्थानों पर तो यह नीरसता भी उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कल्पना का अतिरंजित प्रयोग भी कथा को ऐतिहासिकता से काल्पनिकता की ओर ले गया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता के कारण कथा की सत्यता का जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पाठक पर पड़ता है, वह अनेक स्थानों पर क्षीण हो गया है।

परन्तु जहाँ यह अनुभव भाषा की समाहार-शक्ति के साथ अभिव्यक्त हुआ है, वहाँ सुन्दर मुहावरों के रूप में जनता की वाणी में निवास करने लगा है। इससे इनका प्रभाव भी मार्मिक तथा अधिक स्थायी बन गया है। एक दो उदाहरण देखिये :—

(१) अतर लगसी उन्हाँ दे लोड़ियाँ नूँ,
 जो सोहवतों होण इतार दे जो।
(२) वारसशाह छिपाइये खलक कोलों,
 भावें आपणा ही गुड़ खाइये जो।

वारिसशाह ने यथा-स्थान तात्कालिक राजनीतिक हलचलों, नादिरशाह तथा अहमदशाह के आक्रमणों और सिक्खों के उन्नति करने का भी वर्णन किया है। वारिसशाह विदेशी आक्रमणकारियों से भयभीत है। मुगलों के पतन पर उसे दुःख है तथा सिक्खों के शक्तिशाली होने पर क्षोभ। इससे उसका मुगल-प्रेम प्रगट होता है। ये सभी उसकी कविता में यत्र-तत्र मिल जाते हैं :—

(१) नादिरशाह थीं हिन्द पंजाब घड़के।
(२) जदों देश दे जट्ट सरदार होये,
 घरों घरी जाँ नवी सरकार होई।

वारिसशाह के पात्र अत्यन्त स्वाभाविक हैं। राँझा आदर्श पात्र है। वह कोई भी ऐसा कार्य नहीं करता, जो उसके चरित्र पर बट्टा लगाये। वह आदर्श प्रेमी है। हीर भी आदर्श प्रेमिका है, उसके अन्दर साहस तथा वीरता कूट-कूट कर भरी है। परन्तु यह साहस तथा वीरता दमोदर की हीर से कम है। दमोदर की हीर का चरित्र तो एक बारगी हो अविश्वसनीय बन जाता है।

काव्य का रस मुख्य रूप से शृङ्गार है। संयोग तथा वियोग के बड़े सुन्दर चित्र अंकित हुए हैं। संयोग का एक उदाहरण देखिए —

> १—घुड लाह के हीर दीदार दित्ता,
> रिहा होश ना अकल थी ताक कीता।
> वक बाग दी परी ने झाक दे के,
> सीना चाक दा पाड़ के चाक कीता।

वारिसशाह का शृङ्गार वर्णन कहीं-कहीं अत्यन्त अश्लील भी हो जाता है। संयोग के नग्न चित्र भी इसके काव्य में उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त करुणा, अद्भुत, वीर, रौद्र, हास्य आदि की भी यथा-स्थान सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। काव्य में सर्वत्र भावात्मकता का प्राचुर्य है। भाव की तीव्रता, अनुभूति की गहनता, हृदय का उद्वेग स्थान-स्थान पर छमक पड़ता है। प्रेम की तीव्रता तथा भावात्मकता का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। हीर का भाई हीर को डाँटता है। वह उत्तर देती है —

> अक्खाँ लगियाँ मुड़न ना वीर मेरे,
> बाँदा बार अनो बनिहारियाँ वे।

वहिण पये दरिया ना कदी मुड़दे,
वडे ला रहे जोर जारियाँ वे।

काव्य में कई वर्णन तो विशेप रूप से सुन्दर बन पड़े हैं। जैसे हीर की वीरता, राँझा की सुन्दरता, हीर की सुन्दरता तथा उसका नखशिख वर्णन। वियोग शृङ्गार में हृदय के विभिन्न भावों की अभिव्यंजना सुन्दर तथा कलात्मक बन गयी है।

काव्य की शैली सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। भाव की तीव्रता ने इसमें एक सहज प्रवाह उत्पन्न कर दिया है। वारिसशाह की निजी प्रेम में असफलता ने इस काव्य को करुण रागिनी से भर दिया है। सरदार सन्तसिंह सेखों तो इस काव्य को वारिसशाह की आप-बीती का ही विस्तृत रूप मानते है। काव्य की एक लय है। भाव की तीव्रता तथा निजी अनुभूति ने इसमें एक विचित्र ही संगीत भर दिया है।

इसके अतिरिक्त काव्य में नाटकीयता भी पर्याप्त है। कवि अपने आप को उपस्थित न करके घटनाक्रम से तथा चरित्र-निरूपण से ही वस्तु का विकास करता है।

काव्य की भाषा अत्यन्त सुन्दर तथा मीठी है। मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। फ़ारसी, अरबी, ब्रज तथा अन्य प्रान्तीय बोलियों के शब्दों का भी समावेश हुआ है। भाषा में कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग मिलता है, पर ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है।

प्रतीक विधान तथा अप्रस्तुत विधान सामान्य जीवन के शब्दों से किया गया है। छन्द का चुनाव गेयता के आधार पर हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वारिसशाह का

काव्य महान् है। यद्यपि इसमें अनावश्यक विस्तार आदि
दोष हैं, परन्तु ये दोष गुणों के सम्मुख नगण्य ही हैं। पं
साहित्य को वारिसशाह के काव्य पर गर्व है। इस काव
महानता तथा लोकप्रियता इसी से सिद्ध है कि पंजाब का
समाज आज भी हीर की पंक्तियों को गुनगुनाते हुए सो
है। गाँव का नवयुवक अपने दिन भर के कार्यों से निवृत्त हो
खुले खेतों में बैठकर ऊँचे स्वर से हीर की तानें लगाता
किसी अलौकिक सुख से भाव-विभोर हो उठता है।

मुकबल

मुकबल के जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता
चलता। इनकी एक रचना 'जंग नामा' सन् १७४६ ई०
मिलती है। इसी से इन्हें उत्तर मुगल-काल में सम्मिलित कि
गया है। ये आँखों से अन्धे थे। इनकी प्रसिद्धि हीर की क
लिखने के कारण है।

इनके काव्य से प्रतीत होता है कि इन्होंने अहमद
प्रेरणा ग्रहण की। इन्होंने भी दमोदर की भाँति हीर त
राँझा दोनों को मक्के की ओर रवाना करा दिया है। इस
बाद उनका क्या हुआ, इस सम्बन्ध में कवि मौन हो जाता है
तभी उसने कहा है :—

> मैनूं फेर दी खबर ना कोई मीयां।
> लोकी आखदे ने अज लग जीवदे ने।
> ते रब्बे मौत थीं रब बचाए मीयां।

इनका वर्णन अत्यन्त सादा तथा सरस होता है। कि
वर्णन में हृदय को आकर्षित करने की तीव्र शक्ति है। क
सरल शब्दों में ही हीर तथा राँझा का सौन्दर्य वर्णन कर

हुए कहता है :—

मिर गुंद के मौलड़ी पाउँदियाँ ने,
जुल्फाँ लटक रहियाँ पेच पाइ कै जी।
अक्खी नैन तारे, मुख चन्न जोगा,
संदल भिन्नड़े लेरड़े केस मीयाँ।

कवि की वाणी में संकोच है। कथा के अनावश्यक विस्तार से वह सर्वत्र बचता रहा है। कवि ने अपना ध्यान कहानी कहने की ओर अधिक रखा है। पात्रों पर वह अधिक ध्यान नहीं देता। पात्र कहानी के अनुसार ही प्रगट होते हैं। जिन पात्रों के बिना कहानी का विकास असम्भव हो सकता है, वही सामने आते हैं, शेष पर्दे के पीछे छिपे-छिपे रहते हैं।

काव्य में प्रेम की प्रधानता है। प्रेम में संयोग तथा वियोग दोनों के दर्शन होते हैं। ये प्रेम के चित्र भी कवि अत्यन्त सरल ढंग से प्रस्तुत करता चला जाता है। राँझा के लिए हीर का विलाप इस मार्मिक पद्य में देखिये :—

हीर आखिया, फिकर ना करीं राँझा,
तेरी झूरदी बुरी बला मीयाँ।
नहीं संगदे सूलियाँ फाँसियाँ तों,
काजी शरा दे झगड़याँ जा मीयाँ।

काव्य में तीव्र भावात्मकता है। प्रेम की तीव्रता तथा विरह की असह्यता का सरल शब्दों में वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। प्रेम की प्रधानता होते हुए भी यह भावुकता तथा भाव की तीव्रता की दृष्टि से इतना उत्कृष्ट काव्य नहीं है, जितना वारिसशाह का काव्य है।

मुकबल ने जन-भाषा को अपनाया है। वर्णन की सादगी के साथ-साथ भाषा भी अत्यन्त सीधी-सादी है। वाणी को

काव्य महान् है। यद्यपि इसमें अनावश्यक विस्तार आ
दोष हैं, परन्तु वे दोष गुणों के सम्मुख नगण्य ही हैं।
साहित्य को वारिसशाह के काव्य पर गर्व है। इस का
महानता तथा लोकप्रियता इसी से सिद्ध है कि पंजाब का
समाज आज भी हीर की पंक्तियों को गुनगुनाते हुए सो
है। गाँव का नवयुवक अपने दिन भर के कार्यों से निवृत्त
खुले खेतों में बैठकर ऊँचे स्वर से हीर की तानें लगात
किसी अलौकिक सुख में भाव-विभोर हो उठता है।

मुकबल

मुकबल के जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता
चलता। इनकी एक रचना 'जंग नामा' सन् १७४६ ई
मिलती है। इसी से इन्हें उत्तर मुगल-काल में सम्मिलित
गया है। ये आँखों से अन्धे थे। इनकी प्रसिद्धि हीर की
लिखने के कारण है।

इनके काव्य से प्रतीत होता है कि इन्होंने अहमद
प्रेरणा ग्रहण की। इन्होंने भी दमोदर की भांति हीर
रांझा दोनों को मक्के की ओर रवाना करा दिया है। इ
बाद उनका क्या हुआ, इस सम्बन्ध में कवि मौन हो जाता
सभी उसने कहा है :—

> मैनूं फेर दी खबर ना कोई सीयी।
> लोकी आखदे ने अज लग जींवदे ने।
> ते रबे मौत थीं रब बचाए जीती।

इसका वर्णन अत्यन्त सादा तथा सरस होता है। कि
वर्णन के हृदय को स्पर्शित करने की शक्ति है। स
सरल शब्दों में ही हीर तथा रांझा का सौन्दर्य वर्णन क

हुए कहता है :—

मिर गुंद के मौलड़ी पाउँदियाँ ने,
जुलफाँ लटक रहियाँ पेच पाइ कै जी।
अखी नैन तारे, मुख चन्न जोगा,
सदल भिन्नड़े तेरड़े केश मीयाँ।

कवि की वाणी में संकोच है। कथा के अनावश्यक विस्तार से वह सर्वत्र बचता रहा है। कवि ने अपना ध्यान कहानी कहने की ओर अधिक रखा है। पात्रो पर वह अधिक ध्यान नही देता। पात्र कहानी के अनुसार ही प्रगट होते हैं। जिन पात्रो के बिना कहानी का विकास असम्भव हो सकता है, वही सामने आते हैं, शेष पर्दे के पीछे छिपे-छिपे रहते है।

काव्य मे प्रेम की प्रधानता है। प्रेम में सयोग तथा वियोग दोनों के दर्शन होते है। ये प्रेम के चित्र भी कवि अत्यन्त सरल ढग से प्रस्तुत करता चला जाता है। राँझा के लिए हीर का विलाप इस मार्मिक पद्य में देखिये :—

हीर आखिया, फिकर ना करी राँझा,
तेरी झूरदी बुरी बला मीयाँ।
नहीं संगदे सूलियाँ फाँसियाँ तो,
काजी शरा दे झगड़ियाँ जा मीयाँ।

काव्य मे तीव्र भावात्मकता है। प्रेम की तीव्रता तथा विरह को असह्यता का सरल शब्दों मे वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। प्रेम की प्रधानता होते हुए भी यह भावुकता तथा भाव की तीव्रता की दृष्टि से इतना उत्कृष्ट काव्य नही है, जितना वारिसशाह का काव्य है।

मुकबल ने जन-भाषा को अपनाया है। वर्णन की सादगी के साथ-साथ भाषा भी अत्यन्त सीधी-सादी है। वाणी की

मिठास सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, भाषा मुहावरेदार है। जन-जीवन में प्रचलित मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। भाषा में समाहार-शक्ति बहुत है। कुछ मुहावरे देखिये :—

(१) सिर दे जोर जाणा।
(२) मलहड़े पाउ दुखाणे।
(३) उभे साह भरना।
(४) टुम्ब के जगाणा।

कवि ने सामान्य जीवन से अप्रस्तुत विधान अपनाया है। विवाह, खेत, कुंआ, बादल, चरखा आदि का नाम उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। काव्य में गेयता भी पर्याप्त है। पिंगल का आधार ही गेयता है। वारिसशाह के पश्चात् इनका काव्य दूसरे स्थान का अधिकारी कहा जा सकता है। सरलता तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से इनका काव्य सुन्दर बन पड़ा है।

हामद

आपका जन्म पठानकोट के चण्डी चौंसा गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम शेख अता मुहम्मद था। इनका पूरा नाम हामद शाह अब्बासी था। इन्होंने सन् १७८३ ई० में हीर की रचना प्रारम्भ की तथा सन् १८०४ ई० में समाप्त की।

आपके काव्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आपने वस्तु का चयन दमोदर तथा अहमद के काव्यों से किया है। अपने काव्य में इन्होंने गुरदास खत्री, मुकबल तथा अहमद की रचनाओं का वर्णन किया है। वारिसशाह के काव्य के सम्बन्ध [illegible] नहीं लिखा है।

है। हीर तथा रांझा के प्रेम को अलौकिक प्रेम का रूप देने का प्रयत्न किया गया है। स्थान-स्थान पर चमत्कार भी दिखाये गये है। परन्तु कहीं-कहीं भावुकता तथा भाव की तीव्रता अच्छी बन पड़ी है। रांझा के चलते समय उसकी भाभियों के हाव-भावो का वर्णन उदाहरण के लिए दिया जा सकता है। कविता मे सामान्य रूप से अहमद की रूप-रेखा को ही अपनाया गया है। नवीनता इस काव्य में कोई विशेष नही मिलती। काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है। उसमें संयोग तथा वियोग दोनों ही प्रकार के चित्र मिलते हैं।

आपने ठेठ भाषा तथा मुहावरों को अपनाया है। फारसी का तथा हिन्दी का प्रभाव भी कुछ मात्रा में देखा जा सकता है। कवि ने बेंत छन्द का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं दोहा भी अपनाया गया है। इस युग के अनुरूप इनका काव्य अच्छा खासा कहा जा सकता है।

वार साहित्य तथा कवि

उत्तर मुगल काल में वार साहित्य के अनेक कवि हुए हैं। उदाहरण के लिए नजाबत, अगरा, जसोदानन्दन, पीर मुहम्मद आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। इस काल का वार-साहित्य वार-काव्य के सच्चे स्वरूप को दर्शाता है। वार-काव्य वीर रस पूर्ण काव्य होता है। इस काल को वारें वीर रस से ओत-प्रोत हैं। युद्धों का वर्णन तो इतना सुन्दर बन पड़ा है कि जैसे कवि स्वयं अपनी आंखों से युद्धों की घटनाएं देख रहा हो। वीर रस-प्रधान इन वर्णनों के अलावा शैली का प्रवाह, भाषा की सरलता, उपयुक्त शब्दावली तथा वर्णन की स्वाभाविकता इन सबने मिलकर काव्य के सार-भूत प्रभाव

प्रत्यन्त तलस्पर्शी तथा अधिक गम्भीर बना दिया है।
वीर-रस के साथ सहयोगी रस के रूप में रौद्र, अद्भुत,
त्म रसों का भी चित्रण इस काव्य में हुआ है। इसके
ही तात्कालिक समाज का देश की राजनीतिक, सामा-
, आर्थिक दशा का भी इन वार काव्यों में सुन्दर चित्रण
या गया है। अगरा द्वारा रचित 'हकीकत राये दी वार'
प्रकार की सुन्दर रचना है। नजाबत द्वारा रचित
दिरशाह दी वार' भी तात्कालिक राजनीतिक उथल-पुथल
सुन्दर दिग्दर्शन कराती है।

वार काव्य के रचयिता राष्ट्रीय विचारों से भी प्रभावित
है। नादिरशाह तथा अहमदशाह के द्वारा मचायी गयी लूट
वे निन्दनीय ठहराते हैं। नजाबत ने स्वार्थवश देश-प्रेम
ने वालों को अच्छी फटकार बतायी है। इस प्रकार साहि-
रचना तथा युग प्रतिनिधित्व की दृष्टि से यह साहित्य सुन्दर
दा प्रशंसनीय बन गया है।

नजाबत

नजाबत शाहपुर के मटीला जिले का रहने वाला था।
ट जाति का हरल राजपूत था। कहा जाता है कि यह रावल-
सडी के सैयद शाह चिराग का शिष्य था। इसके नाम से
नादिरशाह दी वार' नामक वार काव्य मिलता है। कुछ
विद्वानों का कथन है कि 'नादिरशाह दी वार' वास्तव में इसके
गुरु शाह चिराग ने लिखी थी। नजाबत ने इसका संशमन
किया तथा परिवर्तन व परिवर्द्धन करके अपने नाम से छप-
वाया। इन विद्वानों में पण्डित हरिदास कौल का नाम विशेष
। में उल्लेखनीय है। परन्तु यह बात कुछ अस्वाभाविक

जँचती है। पहले तो इस काव्य में नजाबत का नाम भ्र
स्थानों पर आता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्ति
जा सकती है :—

नजाबत गल्लाँ अगलियाँ, वड्डी गोट सारी शतरंज दी

फिर कोई भी शिष्य अपनी रचना को गुरु के नाम
छपवा देता है, पर गुरु की रचना अपने नाम से नहीं छपवा
अतः 'नादिरशाह दी वार' को कवि नजाबत की रचना मा
ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मूल्यांकन—'नादिरशाह दी वार' में नादिरशाह
मुगल-सम्राट मुहम्मदशाह के युद्ध का वर्णन किया गय
यह युद्ध सन् १७३९ ई० में करनाल के मैदान में हुआ था।
वार को स्वाभाविक बनाने के लिए नारद तथा मस्त
दो पात्रों का सृजन करता है। दोनों पात्र आपस में ल
तथा रूठ कर नादिर व मुहम्मदशाह को युद्ध के लिए उ
है। नादिर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। राह में मा
मचाता तथा विजय प्राप्त करता हुआ करनाल के मैद
आकर मुहम्मदशाह की सेनाओं से भिड़ता है। क
वर्णन-विशेष रूप से सुन्दर बन पड़े हैं। युद्ध के लिए ज
हाथियों का वर्णन देखिये किस प्रकार स्वाभाविक हुआ

हाथी दिसन आँवदे, विच दलाँ डिंगारे।
दद चिटे देण दिखालियाँ, बहु कित हनेरे।
जिउँ घट काली बिजलियाँ रत समाँ चितारे।

कवि मस्त तथा नारद के द्वारा पुराने रीति-रि
खान-पान, रहन-सहन इत्यादि पर प्रकाश डालना
तात्कालिक समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक

ाम्रों का भी सूक्ष्म विवेचन करता चलता है। इस विवे-
ं कहीं-कहीं कवि कई भूलें भी कर जाता है। उदाहरण
ए काबुल का वर्णन करता हुआ कवि उसे ईरान का सूबा
जाता है।

कवि राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत है। वह मुहम्मदशाह
शंसा तथा नादिरशाह की—उसकी विनाशकारी प्रवृत्ति
रण—निन्दा करता है। देश के लिए मरने वालों की वह
भूरी प्रशंसा भी करता है। देश-द्रोहियों की उसने भरपूर
ा की है :—

मनसूर निजामुल मुलक दो जड़ मुढो जाए।
जिन्हाँ वाल मताबी चोर नूं घर आप वखाये।

वर्णन में हास्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। नादिर-
के सैन्य वर्णन में उसने इसका स्थल किस प्रकार खोज
ाला है, देखिये :—

ओन्हां दे नवक फीने सिर तावड़े ढिड वांग ढमक्के।

इसके अतिरिक्त नारद तथा कल की लड़ाई में भी हास्य
मान है।

वार काव्य की विशेषता वीर रस की अभिव्यक्ति है।
अभिव्यक्ति जितनी सटीक होगी, काव्य में उतनी सजीवता
जावेगी। इस वार में यह विशेषता पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध
ी है। कवि ने वीर रस पूर्ण युद्ध के ऐसे वर्णन प्रस्तुत किये
जिन्हें पढकर वीरों की भुजाएँ फड़कने लगती हैं :—

दोहीं दला मुकाबला रण योधे धड़कण।
चड़ तोपां गड्डी ढुक्कियां लख संगल खड़कण।
उह दारू खाँदियां कोहली रण गोले रड़कण।

वीर रस के स्वरूप को पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए

कवि युद्ध स्थल में एक-एक योद्धा का एक-एक योद्धा से युद्ध तक चित्रित करता है। यद्यपि स्वाभाविकता की दृष्टि से यह सम्भव नहीं है। एक योद्धा का एक योद्धा से युद्ध सतयुग की बात थी, जब धर्म-युद्ध होते थे। परन्तु इस प्रकार के वर्णनों में वीर रस की निश्चय ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के युद्धों का वर्णन भी हुआ है। एक उदाहरण यहाँ देखिये :—

उह जुट पये दोवें सूरमे, रण अग्गे हारे
उह मारण सट्ट वचाण वीग हो पच्चा भारे।
कर भड़ कड़क, पड़क, भड़क, उह गये किनारे।

कवि ने काव्य में वीर के अतिरिक्त वीभत्स, रौद्र, भयानक तथा अद्भुत रस का भी यथा-स्थान सुन्दर प्रयोग किया है। काव्य की शैली अत्यन्त सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। सरल शब्दों के प्रयोग से काव्य में जहाँ सरलता आ गयी है, वहाँ शैली में प्रवाह भी बढ़ गया है। उदाहरण देखिये —

चढ़े मुगत्ता बादशाह धरती धमकाई।
घोड़ा साढ़े दस लख, रजवाड़े मारे।
गरदां पलकों पहुँचियां, वे गये गुबारे।
दिहूँ चन्न नजर ना आवेंदा, असमानी तारे।

वीर रस के वर्णनों में वीर रस के उपयुक्त शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है। शब्दों में युद्ध की ध्वनि को व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति है। परन्तु सरलता यहाँ भी बनी रही है। शब्दों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने एवं अप्रचलित शब्दों के प्रयोग का बहिष्कार-सा किया गया है।

भाषा में अरबी-फारसी के तथा हिन्दी के प्रचलित शब्दों का समावेश है। ओज गुण प्रधान शब्दों की भी कमी नहीं है।

काव्य में पौड़ी तथा सिरखण्डी छन्द का प्रयोग हुआ है। छन्द में मात्रा-दोष पाया जाता है। हो सकता है कि गाने वाले मिरासियों की वाणी-परम्परा में रहने के कारण यह दोष आ गया हो। अलंकार स्वाभाविक रूप से काव्य में आ गये हैं। चमत्कार प्रदर्शन के लिए उनका प्रयोग नहीं हुआ। उपमा तथा दृष्टान्त अलंकार के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

नजाबत का यह वार-काव्य पंजाबी साहित्य में एक विशेष स्थान रखता है। वार-साहित्य में प्रथम स्थान 'चण्डी दी वार' को दिया जाता है तथा दूसरा स्थान 'नादिरशाह दी वार' को। साहित्यिकता तथा युग प्रतिनिधित्व की दृष्टि से यह अत्यन्त सुन्दर काव्य है। इस काव्य से प्रेरणा लेकर परवर्ती काल में भी अनेक वार-काव्य लिखे गये हैं। आज भी इसी की रूप-रेखा पर प्रयास किया जाता है।

भक्ति-साहित्य तथा कवि

इस युग में भक्ति-साहित्य पर कोई उल्लेखनीय रचना नहीं लिखी गयी है। भक्ति शान्ति की वस्तु है। देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी परिस्थितियाँ विषम थीं। चारों ओर अशान्ति व्याप्त थी। इसके साथ ही भक्त भी अपने स्तर से गिर चुके थे। ईश्वरीय प्रेम में मग्न होने वाला भाव न तो सूफियों में हो रहा था, न भक्तों में। सिक्ख जाति भी अब सन्त सम्प्रदाय न रह कर एक योद्धा-समूह में परिवर्तित हो चुकी थी। युग ही ऐसा था कि माला के स्थान पर तलवार पकड़नी पड़ रही थी। गुरुओं का युग समाप्त हो चुका था। परिणामस्वरूप जो एक-दो भक्तिपरक रचनाएँ हुईं भी तो उनमें भक्ति में आन्तरिक हृदय की सहज अनुभूति का अभाव

था। रागात्मकता, अनुभूति की तीव्रता, भाव-प्रवणता, वि
लता तथा पारलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम में मस्त हृदय की स
अभिव्यक्ति विरह की तीव्रता, असह्यता तथा वेदना का
रूप इस साहित्य में नहीं मिलता, जो गुरुमत के साहित्य
मिलता है। सहृदय के मन को खींचने की, भक्ति रस
आस्वादन कराने की शक्ति इस साहित्य में बहुत कम है।

साहित्यिकता की दृष्टि से भी इस साहित्य का कोई वि
महत्त्व नहीं है। इस क्षेत्र में गरीबदास, साहिब जै सिंह, न
शाह, लालजी दास, बिहारी आदि का नाम लिया जा स
है। कुछ विद्वान् अगरा को भी भक्त मानते हैं। अगर
'हकीकत राय दी वार' लिखी है। हकीकत राय छो
बालक था और वह धर्म के नाम पर बलिदान हो गया
काव्य में धर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। उस
के रहन-सहन आदि पर भी अच्छा प्रकाश डाला गय
गरीबदास ने भक्तिपरक 'शब्द' लिखे हैं, जो इनके द्वार
लित पंथ में प्रचलित हैं। बुधसिंह ने भक्ति परक काफिय
सीहरफियाँ लिखी है। सेवासिंह ने भी सीहरफियाँ, स
बारामाँह पर लेखनी चलायी है।

गद्य-साहित्य

इस काल में भी गद्य-रचना के विषय वही रहे जो
युग में थे। गद्य का प्रयोग धार्मिक पुस्तक की टीका,
तथा गोष्ठियों इत्यादि के वर्णन में ही हुआ है। इसके
रिक्त गद्य में कई जीवन चरित्र भी लिखे गये हैं।

इस काल की गद्य की रचनाओं में पंजाबी भाषा

शक्ति के विकास की ओर लेखकों का ध्यान रहा है। अनेक साधुओं का ध्यान भी इस काल में गद्य-रचना की ओर रहा। इन साधुओं में निरमले साधु और सेवा पन्थी साधुओं ने गद्य को विशेष रूप से धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार का साधन बनाया। गद्य की शैली इस युग में काफी विकसित हुई। विचार प्रगट करने की क्षमता भी इसमें पूर्व युग से अधिक आ गयी थी, परन्तु फिर भी इसकी शैली में कविता की शैली से अधिक अन्तर नहीं हुआ। कविता का तुक-विधान तथा मात्रा-विधान इसमें नहीं था, पर शेष गुण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

इस काल में दो गद्य-लेखक विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर गये हैं—भाई मनीसिंह तथा अड्डनशाह। मनीसिंह की रचनाएँ 'भगत रतनावली', 'गियान रतनावली' तथा 'जपु जी की टीका' मिलती है। अड्डनशाह ने 'पारस भाग' नाम से 'कीमिआये सआदत' का अनुवाद किया है। इन दो लेखकों के अतिरिक्त 'प्रेम सुमारग' नाम से एक और सुन्दर रचना प्राप्त होती है, परन्तु इसके लेखक का पता नहीं चलता। इस काल में अन्य बहुत-सी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। जो निम्नलिखित हैं :—

(१) पक्की रोटी, (२) साखियाँ या पचियाँ, (३) टीका सिध गोसटि, (४) भागवत, (५) कबीर, रविदास व हजरत मुहम्मद साहिब के जीवन वृत्तान्त, (६) अपरोक्ष अनुभव, (७) गियामन चतीमी, (८) योग वशिष्ट, (९) महिमा परकाश, (१०) सौ साखी, (११) रहित नामे।

भाई मनीसिंह

भाई मनीसिंह पटियाला के निवासी थे। इनके जन्म के

विषय में तो पता नहीं चलता, परन्तु मृत्यु सन् १७३७ ई० में हुई थी। आप गुरु गोविन्दसिंह जी के सेवकों में से थे। बाद में आप अमृतसर के गुरुद्वारे 'हरमिन्दर साहिब' के सर्वप्रथम ग्रन्थि नियुक्त किये गये। अन्य सिक्खों की भाँति आपको भी राजकीय अत्याचारों का सामना करना पड़ा, फलस्वरूप इन्हें अपना बलिदान देना पड़ा।

आपने भाई गुरदास की भाँति गुरु ग्रन्थ साहिब की दमदमे वाली प्रति को हाथ से लिखा था। आप पंजाबी के साथ फारसी, संस्कृत तथा ब्रज भाषा के भी विद्वान् थे। आपने गद्य रचना ही की थी। आपकी रचना का विषय भाई गुरदास की भाँति गुरमत के सिद्धान्तों की व्याख्या करना ही रहा है। 'भगत रतनावली' तथा 'गियान रतनावली' आपकी दो गद्य रचनाएँ हैं। आप अपने विषय का प्रतिपादन सुन्दर ढंग से करते हैं। शैली आपकी अत्यन्त प्रवाहपूर्ण तथा कवित्वमयी है। विषय को समझाने के लिए आप बड़े सटीक उदाहरण प्रस्तुत करते चले जाते हैं। इनके गद्य की भाषा बड़ी मीठी तथा अलंकारों से भरपूर है। आपके शब्दों में विषय को प्रतिपादित करने की अपूर्व शक्ति है। आपके गद्य से पंजाबी गद्य-साहित्य की काफी उन्नति हुई है। आपकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

'जैसे मोर मेघ दीयां धुनी सुण कै, प्रसन्न होइकै, पाइल पाउँदा है, तैसे गुरु का सिख कीरतन नू सुण कै, उन्हाँ दा मन पाइल पाउँदा है।
(गियान रतनावली)

अड्डणशाह

आपके जन्म की तिथि के सम्बन्ध में पता नहीं चलता।

आप लद्दू गाँव, ज़िला झंग के रहने वाले थे। आपकी मृत्यु सन् १७५७ ई० में मानी जाती है। आप भाई सेवाराम जी के शिष्य थे और आप सेवा पन्थी साधु थे। झंग, लाहौर, करतारपुर, फगवाड़ा तथा जम्मू आपका क्षेत्र माना जाता है। वैसे आप सारे पंजाब में प्रसिद्ध हैं।

आपकी रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। प्रो० मोहनसिंह ने आपके नाम से 'पारस भाग' के साथ साखियाँ तथा कुछ और रचनाएँ भी स्वीकार की हैं। परन्तु प्रो० प्रीतमसिंह ने आपके 'पारस भाग' का सम्पादन करते हुए भूमिका में लिखा है कि साखियाँ इनकी रचनाएँ न होकर इनके सम्बन्ध में हैं। इनकी रचना केवल 'पारस भाग' ही है। सरदार रणधीरसिंह ने 'पारस भाग' को भाई मंगू की रचना बताया है, परन्तु प्रो० प्रीतमसिंह, भाई काहनसिंह, डॉक्टर बलबीरसिंह, महंत देसासिंह तथा डॉ० लाइटनर ने 'पारस भाग' को अड्डणशाह की रचना ही स्वीकार किया है।

'पारस भाग' प्रसिद्ध ईरानी विद्वान इमाम गज्ज़ाली की रचना 'कीमिआये सआदत' का अनुवाद है। पुस्तक काफी बड़े आकार की है। इस रचना को इस युग की सर्वश्रेष्ठ गद्य-रचना स्वीकार किया जाता है। गद्य-शैली इसकी अत्यन्त प्रवाहपूर्ण तथा कवित्वमयी है। विषय को बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से उपस्थित किया गया है। शब्दों का चुनाव बड़ा सटीक है। भाषा पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव है और अन्य भाषाओं के शब्द यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। परन्तु उनका प्रयोग मुख्य भाषा के साथ इतना सुन्दर बन पड़ा है कि भाषा में एक प्रवाह आ गया है। पंजाबी गद्य-शैली के निर्माण का बहुत कुछ श्रेय आपको दिया जा सकता है। भाषा की मिठास पाठक के हृदय को

रस-विभोर कर देती है। एक उदाहरण देखिये :—

'अब इसके आगे ऐसे जाण तूं, जो इस मनुख को भगव
ने विग्रर्थ खेलण अर हसण नमित उतपति नही कीआ। तां
मनुख दा पद भी महा उतम है।'

प्रेम सुमारग

इस रचना के लेखक का पता नहीं चलता। अनेक विद्वा
ने इसे इस काल की सबसे सुन्दर रचना माना है। डॉ० मोह
सिंह ने तो इस रचना के आधार पर इस काल का नाम अप
पुस्तक 'पंजाबी दी जाण पछाण' में 'प्रेम समारग काल' र
है। कुछ विद्वानों के मत से यह गुरु गोविन्दसिंह जी की रच
है, परन्तु इसके अन्दर जो घटनाएँ हैं तथा विषय का प्रतिपा
जिस प्रकार किया गया है, उससे यह किसी गुरु भक्त सिक्ख
रचना प्रतीत होती है। जीवन के नित्य-प्रति के कर्मों
अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सरलता इस
विशेष गुण है। आलंकारिकता भी पर्याप्त मात्रा में उपल
होती है। शैली में प्रवाह है। एक उदाहरण देखिये :—

'हुकम है जो जाने दो पहर दिन आया है, तां फिर हम,
गोड्यां तक धाइ के इकनवारो जपु जाप पढ़े फेर किरत करे

अध्याय ७

रणजीतसिंह काल

पंजाबी साहित्य में रणजीतसिंह काल का समय सन् १८०० ई० से सन् १८६० ई० तक माना जा सकता है। इस काल में पूर्व युग की सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक सभी परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों को इस प्रकार दिखाया जा सकता है :—

राजनीतिक—उत्तर मुगल काल के उत्तरार्द्ध में ही सिक्ख शक्ति प्राप्त करने लगे थे। सिक्खों की १२ मिसलें बन गयी थीं। इनमें से एक मिसल के सरदार महाराजा रणजीतसिंह थे। इन्होंने सभी मिसलों को फिर से संगठित किया तथा सन् १७९९ ई० में लाहौर पर अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे इन्होंने समस्त पंजाब पर अधिकार कर लिया तथा इस प्रकार लगभग ८०० वर्षों की पराधीनता के पश्चात् पंजाब पर फिर से पंजाब-वासियों का अपना राज्य स्थापित हुआ। महाराजा रणजीत-सिंह का लगभग ५० वर्ष तक पंजाब पर शासन रहा। इन पचास वर्षों में जनता एक प्रकार से सभी राजनीतिक विप्लवों तथा अशान्तिपूर्ण वातावरण को भूल गयी। उत्तर मुगल काल के युद्धों से छुटकारा पाकर जनता ने सुख की साँस ली।

सामाजिक—सामाजिक दृष्टिकोण से उत्तर मुगल काल अत्यन्त अशान्तिपूर्ण युग रहा है। परन्तु रणजीतसिंह काल में

राजनीतिक अशान्ति समाप्त हो जाने के कारण सामाजिक अशान्ति भी समाप्त हो गयी। महाराजा रणजीतसिंह अत्यन्त निष्पक्ष शासक थे। हिन्दू, सिक्ख तथा मुसलमान सभी के साथ समान व्यवहार किया जाता था। सभी धर्मों को समान रूप में स्वतन्त्रता थी।

देश में जागीरदारी शासन था। शान्तिमय वातावरण होने के कारण सभी जागीरदार विलासी होते जा रहे थे। किसी भी धर्म में अब पहले वाला साधना का भाव नहीं रहा था। पंजाब की आर्थिक दशा भी अच्छी थी। पंजाब सभी प्रकार से सुव्यवस्थित था।

साहित्यिक—महाराजा रणजीतसिंह स्वयं तो अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु गुणियों का बड़ा सम्मान करते थे। उनके यहाँ अनेक कवियों को राजाश्रय प्राप्त था। महाराज की देखा-देखी अन्य सामन्त भी कवियों को आश्रय प्रदान करने लगे थे। सामन्तों के यहाँ प्राय. दरबार लगा करते थे। परिणामस्वरूप कवि जनता के कवि न रह कर राजा तथा सामन्तों के कवि बन गये थे। आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए दो प्रकार की कविताएँ रची जाती थीं—प्रथमतः तो विलासिता को बढ़ाने वाले प्रेम-कथा काव्य लिखे जाते थे। इसमें शृङ्गार की मात्रा पहले से अधिक समाविष्ट की जाने लगी थी। कवि का उद्देश्य केवल आश्रयदाता को विलासिता को बढ़ावा देना होता था। इस दिशा में हाशम ने सस्सी-पुन्नू, शीरी-फरहाद, सोहणी आदि प्रेम-कथा काव्य लिखे। अहमद यार ने सस्सी-पुन्नू, राजबीबी, हीर आदि लगभग पचास प्रेम-कथा काव्य लिखे हैं। कादर यार ने सोहणी-महीवाल आदि अनेक प्रेम-कथा काव्य लिखे। इनके अतिरिक्त इमाम बक्श,

...हरीसिंह, निहाल आदि कवियों ने प्रेम-कथा काव्य लिखे हैं।

... [illegible] आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये वार साहित्य लिखा गया। यह वार साहित्य आश्रयदाताओं तथा उनके पूर्वजों की वीरता की प्रशंसा से ओत-प्रोत होता था। आश्रयदाता की वीरता का इतना बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया [illegible] की [illegible] का [illegible] इसमें छिप-सा जाता था। [illegible] तथा अतिशयोक्ति पूर्ण इस काव्य में वह प्रभाव तथा [illegible] न रह सकी थी, जो पूर्व काल के वार-काव्यों में पायी [illegible] थी। इस दिशा में कादर यार की "हरीसिंह नलवे दी [illegible]", [illegible] का "जंग नामा", शाह मुहम्मद का [illegible] आदि रचनाओं का नाम लिया जा सकता है।

... उपर्युक्त वर्णित साहित्य के अतिरिक्त कुछ सूफी कवियों [illegible] को भी इस युग में गिनाया जा सकता है। गुलाम [illegible], वीरसिंह, करीम बख्श, नूर मुहम्मद, गुलामदाम [illegible] बुधसिंह आदि का नाम उदाहरण के लिए प्रस्तुत [illegible] जा सकता है। इन सूफी कवियों में न धर्म का उत्साह [illegible] था, न प्रेम की मस्ती ही। साधना के अभाव में इनका [illegible] केवल परम्परा की लकीर पीटना मात्र रह गया था।

इस युग में कुछ अनुवाद भी किये गये। वाल्मीकि [illegible] की टीका, भक्त माल की टीका आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। भाई सन्तोखसिंह का "सूरज प्रकाश", "गुरु [illegible]", "आत्म पुराण" आदि कुछ रचनाएँ और भी

चलती रही। गद्य के क्षेत्र में ईसाइयों के द्वारा भी काफी कार्य हुआ, परन्तु उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। ईसाइयों ने बाइबल का अनुवाद पंजाबी भाषा में कराया। परन्तु यह अनुवाद मलवई बोली में था। इसलिए इसको कोई विशेष स्थान साहित्य में नहीं मिला। इसके अतिरिक्त "अकबर नामा", "अदले अकबरी" के अनुवाद, "महाराजे दी डायरी", सन्तोखसिंह का "सार सूरज प्रकाश", तथा किशोरदास का "गीता महात्म" आदि लिखे गये।

इस काल में पंजाबी की इतनी उन्नति न हो सकी, जितनी होनी चाहिए थी। कारण यह था कि महाराजा रणजीत सिंह की नीति अत्यन्त उदार थी। उन्होंने राजकीय कार्यों में फारसी को ही पूर्ववत् स्थान दिये रखा। परिणामस्वरूप पंजाबी का विकास अधिक न हो सका। सन् १८५० ई० के लगभग पंजाब पर फिर अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया। अंग्रेजों ने अंग्रेजी को प्रथम स्थान देकर उर्दू को दूसरी भाषा का स्थान दिया। प्रारम्भिक शिक्षा में प्रत्येक बालक को उर्दू पढ़नी पड़ती थी। पंजाबी को जो थोड़ा-बहुत प्रोत्साहन महाराजा रणजीतसिंह के राज्य काल में मिला था, अब वह भी समाप्त हो गया। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप पंजाब निवासियों के हृदय में जो अपने देश तथा भाषा आदि के लिए प्यार उत्पन्न हुआ, उससे पंजाबी भाषा तथा साहित्य ने अभूतपूर्व उन्नति की। यह उन्नति सन् १८६० ई० के पश्चात् हुई। अत: यह अधिक उपयुक्त होगा कि रणजीतसिंह युग को सन् १८६० ई० तक मान कर बाद के समय को आधुनिक काल के नाम से अगले अध्याय में विवेचित किया जावे।

हाशम

हाशम का जीवन काल सन् १७५३ ई० से सन् १८२३ ई० तक माना जाता है। यह अमृतसर में जगदिग्रो ग्राम के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम हाजी मुहम्मद शरीफ़ था, जो जाति के कुरैशी थे तथा व्यवसाय हकीमी का था। कहा जाता है कि हाशम ने पहले गाँव में ही पढ़ाई की तथा बाद में पीर बख्श जलाल की शिष्यता स्वीकार कर ली। इन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के पिता सरदार महासिंह जी की मृत्यु पर एक शोक-गीत लिखा, जिससे महाराजा रणजीतसिंह की दृष्टि में इनका सम्मानजनक स्थान बन गया। ये राजकवि बनाये गये तथा इन्हें कुछ जागीर भी प्रदान की गयी।

आधुनिक विद्वान् प्रो० प्रीतमसिंह इन्हें महाराजा रणजीतसिंह का राज-कवि नहीं मानते। उनके मत में इन्हें महाराजा से कोई जागीर भी नहीं मिली। प्रो० प्रीतमसिंह के इस वक्तव्य पर अभी अन्य विद्वानों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। यह खोज का विषय है, इसलिए इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि हाशम राज-कवि थे या नहीं।

इनके नाम से छः रचनाएँ स्वीकार की जाती हैं :—(१) शीरीं-फरहाद, (२) लैला-मजनूँ, (३) सोहणी-महीवाल, (४) सस्सी-पुन्नू, (५) दोहड़े तथा (६) बारामाह। इनकी ख्याति का आधार विशेष रूप से सस्सी-पुन्नू, दोहड़े तथा बारामाह ही हैं।

मूल्यांकन—हाशम के काव्य में शृङ्गार रस की प्रधानता है। डॉ० लाजवन्ती तो आपको सूफी कवि मानती हैं। परन्तु ने काव्य में भौतिक प्रेम की ही प्रधानता है। प्रो० सन्तोख

इन्हें मानवीय प्रेम का कवि ही मानते हैं। यों म
के-मजाजी को इश्के-हकीकी बनाने का प्रयत्न भी
जा सकता है, परन्तु प्रधानता इश्के-मजाजी की ही है। क
में भाव की तीव्रता, रागात्मकता, तथा सरलता इनकी प्र
विशेषताएँ हैं। प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं में हृदय के
भावों का मार्मिक चित्रण इनके काव्य में उपलब्ध होता
कवि को कविता लिखने का प्रयास नहीं करना पड़ता।
की तीव्रता के कारण ऐसा लगता है जैसे कविता क
कण्ठ से स्वतः ही निस्सृत हो रही हो। संयोग तथा वियो
शृङ्गार की दोनों ही अवस्थाओं का चित्रण हुआ है।
भी वियोग पक्ष अधिक मार्मिक बन गया है। काव्य के अ
से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि अपने जीवन में स्वयं
रहा हो। इनके सभी काव्य दुखान्त हैं। प्रेम की
वियोग की असह्यता से उत्पन्न तड़प तथा उद्वेग पाठ
भी द्रवीभूत कर देते हैं।

कवि को जीवन का गहरा अनुभव है। उसके क
यत्र-तत्र यह अनुभव स्वतः व्यक्त हो उठता है।

(१) तैनूं हुसन खराब करेंगा, मैंनूं समझ सताया

(२) ईशक छुपाया छुपदा नाहीं भाह ना छुपदी क

कवि ने सर्वत्र अत्यन्त सरल भाषा को प्रयुक्त कि
शब्दों का चुनाव कवि ने अत्यन्त सावधानी से किया है
सभी क्षेत्रों से उत्तम शब्दों का चयन करके टकसाल
उपस्थित कर दी गयी है। कहीं-कहीं फारसी तथा
प्रचलित शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द कहीं पर भी
नहीं हैं। वाणी की मिठास की ओर कवि पूर्णतः
रहा है। अत्यन्त सहज तथा स्वाभाविकतापूर्ण ढंग

वर्णन करना पाया जाता है।

कवि ने छन्दों में सवैया, दोहा आदि को पसन्द किया है। भाषा दोष का अभाव है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। भरती के अलंकारों का प्रायः अभाव ही है। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार काव्य में स्वतः ही अपनी शोभा बिखेरते चलते हैं। कवि ने सामान्य जीवन से ही अप्रस्तुत विधान का चुनाव किया है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) चंदा चमक विखाल ना सानूँ
 अगे ना कर मान वधेरा।
 लै जिहे लख चढ़न असाँ नूँ,
 पर सजना बाझ अन्धेरा।

(२) जाँ ओड़क वक्त कहिर दीयाँ कूकाँ,
 सुण पत्थर ढल जाए।
 जिस डाची मेरा पुन्नू खड़िया,
 दाला दोजख वल जाए।

(३) हर हर पोसत दे विच दोसत, दोसत रूप वटावे।
 दोसत तीक ना पहुँचे कोई, एह पोसत रूप भुलावे।

(४) हाराम मरण कुमौत वदेशी, लूण वाँगू खर खर के।

(५) वालू रेत तपे विच थल दे,
 जिउँ जौ भुन्नण भठिआरे।

कादिर यार

जन्म कब हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक जा सकता, परन्तु इतना निश्चित है कि ये महाराजा के समय में हुए थे। ये जाति के संधु जाट थे।

कुछ लोगों का विचार है कि ये महाराजा रणजीतसिंह के दरबारी कवि थे। परन्तु इतना तो सभी मानते हैं कि उन्हें किसी सामन्त ने प्रसन्न होकर एक कुंग्रा पुरस्कार में दिया था। इन्होंने स्वयं लिखा है :—

पूरन भगत दी गल सुणाइके जी,
इक खूह इनाम लिखाइया मैं।

ये जिला शेखूपुरा के निवासी थे। इन्होंने सामान्य विद्या ही प्राप्त की थी। इस सम्बन्ध में यह स्वय लिखते हैं :—

मैं दहिकान बेइलम विचारा दोश न चाहिए धरना।

इनके नाम से अनेक रचनाएँ मिलती हैं :—(१) महिराज नामा, (२) सोहणी, (३) पूरन भगत, (४) हरिसिंह नलवा, (५) राजा रसालू, (६) राणी कोकलां। किन्तु आपकी ख्याति का आधार मुख्यत: आपका 'पूरन भगत' काव्य है। करुण-रस से आप्लावित होने के कारण सामान्य जनता पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। साहित्यिकता की दृष्टि से 'हरि सिंह नलवे की वार' अधिक सुन्दर बन पड़ी है।

मूल्यांकन—पूरन भगत काव्य में करुण रस की प्रधानता है। कवि को करुण रस के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। कवि ने पात्रों के आदर्श को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। पूरन का अपने आचरण से न गिरना, सभी कष्टों तथा विपत्तियों को धैर्य से सहन कर लेना, रानी सूणा का त्रिया-चरित्र, सुन्दरता का जादू, रानी इच्छरां का मोह, आदि बातों के चित्रण मे कवि को विशेष सफलता मिली है। सोहणी काव्य में भी मानव मन के कोमल भावों को कवि ने बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है। काव्य में शृङ्गार रस की प्रमुखता है। हरिसिंह नलवा काव्य

में वीर रस की प्रधानता है। उत्साह की व्यंजना स्थान-स्थान पर हुई है। परन्तु काव्य में जो मार्मिक स्थल हैं, वहाँ पात्रों की मनोस्थिति को परखने में कवि पूर्णतः सफल नहीं रहा। उदाहरण के लिए मृत्यु के समय वीर हरीसिंह की आँखों में आँसू दिखा दिये गये हैं। इससे उसके हृदय में परिवार के लिए मोह प्रकट होता है।

सीने सीने सरदार दे तीर लगा,
कंब गिया जो तीर शरीर सारा।
लक बन्ह के घोड़े ते चीख वटी,
अखीं चल पिया जदों नीर सारा।
घर बार धीआं पुतर याद आये,
लगा सल विछोडे दा तीर भारा।
कादर यार जां किले बठालयो ने,
तां हो गया पथ दिल गीर सारा।

किन्तु कवि को वर्णनों में सफलता मिली है। सरल शैली में कवि प्रत्येक बात को प्रस्तुत करना जानता है। सोहणी का रूप वर्णन अत्यन्त सरल तथा सीधे-सादे शब्दों में प्रस्तुत कर देता है। कविता में प्रवाह है। सामान्य जीवन के मुहावरों का काफी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के रूप में कुछ पद्यांशों को देखिये :—

(१) दाल विच लूण मत्रणा, (२) रतो रत होणा, (३) जी पत्थर होणा, (४) जामे विच ना मिउणा आदि।

इन मुहावरों के प्रयोग से भाषा में एक चुस्ती आ गयी है। कवि ने ठेठ भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में सरलता का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। कवि को अधिक विस्तार प्रिय नहीं है। वह जो कुछ कहता है, उसे अधिक लम्बा नहीं

खींचता। मात्राओं का तोल भी प्रायः ठीक ही रहता है। सामान्य जीवन से ही कवि ने अप्रस्तुत विधान ग्रहण किया है। अलंकारों का अधिक प्रयोग नहीं हुआ है। कुछ उदाहरण देखिये :—

(१) काफ कतल कराऊँगी पूरना वे,
आखे लग जा भला जे चाहवणा एँ।
झोली अड्ड के खड़ी मैं पास तेरे,
है सिआरया खैर ना पावणा एँ।

(पूरन भगत)

(२) रात हनेरी शूक दी बदली मारे अक्ख।
उह भावें मोई कादरा सिदक पिया दिल रक्ख।
नाजक सोहणी बदन दी वे दिल कीता ठंड।
लहराँ दे विच जा पई मौजाँ कड्ढण ठंड।

(सोहणी)

अहमद यार

अहमद यार का जीवन काल सन् १७६८ ई० से सन् १८४५ ई० तक माना जाता है। इनका जन्म इस्लामगढ़ जिला गुजरात में हुआ था। पिता आदि खेती करते थे। इनका मन खेती में नही लगता था। इन्होंने शिक्षा प्राप्त की, परन्तु घर के काम-काज से जी चुराने के कारण इनकी अपने भाइयों से भी नही बनती थी। अपनी आयु का अधिकांश भाग इन्होने जलालपुर में बिताया था। ये स्वयं लिखते हैं :—

जिला सलाम गढ़े विच जम्मे, ओथे सुरत संभाली।
वस्से शाहिर जलाल पुरे जा, खलक्त रहे सुखाली॥

कहा जाता है कि इनका किसी हिन्दू-स्त्री से प्रेम हो गया

था। गाँव में बदनामी होने के कारण इन्हें गाँव छोड़
था। फिर मुराले गाँव मे रहने लगे थे। ये मरबी तया
के अच्छे विद्वान् थे। कहा जाता है कि महाराजा रणजी
जी ने इनको एक जागीर भी प्रदान की थी।

इनके पचास के लगभग काव्य बताये जाते हैं। परन्
ही काव्य प्रसिद्ध हैं। ये काव्य इस प्रकार हैं :—

(१) कामरूप, (२) राम-लता, (३) हात
(४) यूसफ-जुलेखा, (५) हीर-राँझा, (६) लैला-म
(७) सोहणी-महीवाल, (८) राजबीबी, (६) सस्सी
(१०) चंदरबदन आदि।

मूल्यांकन—अहमद यार ने पंजाबी साहित्य में
अधिक प्रेम काव्य लिखे हैं। कवि को स्वयं भी उनका नाम
नहीं रहता :—

जितने किस्से अते किताबाँ उमर सारी मैं जोड़े
गिणन लगा ते याद न आवण, जो दस्साँ सो थोड़े

कवि ने साहित्य रचना के साथ-साथ पूर्व काल के
समकालीन कवियों की आलोचना भी पद्यबद्ध रूप में प्र
की है :—

सुथरा शेअर ना हाफ़ज़ जिहा, तोल पूरा उस हट्टी
पर अगलियाँ पिछलियाँ शायराँ दी मैं इस वेले कसवट्टी
पीलू नाल ना रीस किसे दी, इस विच सोज़ अलहदी
मसन निगाह कीती उस पासे किसे फकीर बलीदी
वारस शाह सुखन दा वारस, किनों न अटकया दलिया
मिनराह् चक्की वाँगू उस निका मोटा दलिया
. . . ल वी हो चुकया मुकबल आपणे विच जमाने
. . . वी अखवाया शाइर, आपणी नाल जवाने

हाशम सस्सी सोहणी जोड़ी सद्द रहमत उसतादों।
पर दिल विच वड्डा तुम्रजब आवे शीरी ते फरहादों।

कवि का विशेष महत्त्व इस प्रकार की साहित्यिक आलोचना करने के कारण है। कवि को जीवन का गहरा अनुभव था। वह अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं का विद्वान् था। उसका यह अनुभव तथा उसकी विद्वता कवित्व-शक्ति के सहज प्रस्फुटन में बाधक रही। परिणामस्वरूप उसके प्रायः सभी काव्यों में उसकी बौद्धिकता तथा उपदेश का प्राधान्य हो गया है। भावात्मकता, भाव की तीव्रता तथा सहज प्रवाह का अभाव ही पाया जाता है। कवि को स्वय भी इस अपनी कमी का अनुभव था तथा उसने इस पर दु.ख भी व्यक्त किया है :—

वारसशाह जंडियाले वाले वाह वा हीर बणाई।
मैं वी रीस उसे दी करके लिक्खी तोड निभाई।
जो ग्रटकल मजमून बन्हणदी उस, सो मैं नही पाई।
वड़ा तुम्रज्जब होवे यारो, वेख उसदी वडिग्राई।

कवि काव्य में सामान्य स्वाभाविक अथवा यों कहें कि वास्तविक जीवन का चित्रण नही कर पाया है। काव्य में स्वाभाविकता का अभाव है। भाषा में भी अरबी-फारसी के शब्दों की भरमार है। वर्णन खासे सुन्दर बन पड़े है। किन्तु तूफान आदि कई घटनाओ, चुड़ैलों के चित्रण में कवि के वर्णन सुन्दर वन पड़े हैं। कवि का अप्रस्तुत विधान भी सुन्दर बन पड़ा है। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का सफल प्रयोग कवि ने किया है। पिंगल की कसौटी पर भी कवि खरा ही उतरा है। कवि मे केवल एक ही दोष है जो उसकी सारी कवित्व-शक्ति को गौण कर देता है—और वह

समें भावात्मकता का अभाव अथवा विद्वता का प्राधान्य।
की रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

> नैण जहाज इशक दी बेड़ी, पलकां चंभ दवालो।
> पलकां तीर कमानां अबरू, मिसल की उस तहीं दी।
> सूरज दे चिहरे झलके जीनत कोम कुजा दी।
> दूरों सिफत नैणां दी सुण के गिरन गए बियाबानी।
> कतरा शबनम दा गुल गिरदे मोती दंद जवानी।
> काली घटा वालां दी सिर ते रिशमां फिरें पेशानी।

शाह मुहम्मद

इनका जीवन काल सन् १७८२ ई० से सन् १८६२ ई० तक माना जाता है। यह जाति के कुरैशी तथा अमृतसर के वटाला नामक स्थान के रहने वाले थे। कवि के अनेक रिश्तेदार महाराजा रणजीतसिंह के तोपखाने में कार्य करते थे। कवि ने केवल राज्य का शासन प्रबन्ध, अंग्रेजों से सिक्खों के युद्ध तथा उनका पतन, सब-कुछ अपनी आंखों से देखा था। इनकी प्रसिद्ध रचना 'जंग सिंघा ते अंग्रेजों' है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित एक और काव्य 'सस्सी-पुन्नू' भी बताया जाता है, परन्तु वह प्रसिद्ध नहीं है। कवि की ख्याति का आधार उनका वार काव्य ही है।

मूल्यांकन—कवि राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत है। वह सिक्ख तथा हिन्दुओं को भिन्न न मानकर एक ही जाति मानता है। महाराजा रणजीतसिंह के शासन की प्रशंसा करता हुआ वह अंग्रेजों का आगमन हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए एक विपत्ति बताता है :—

खुशी वसण हिन्दू मुसलमान दोवें,
सिर दोहाँ दे उत्ते अफात आई।
शाह मुहम्मदा विच पंजाब दे जी,
नहीं कदी सी तीसरी जात आई।

कवि सिक्खों की हार का कारण उनकी आपस की फूट, कुछ देश-द्रोहियों की काली करतूत तथा महाराजा रणजीतसिंह के अभाव को बताता है —

जंग हिन्द पंजाब दा होण लगा,
दोवें बादशाही फौजां भारियां ने।
अज होवे सरकार ते मुल पावें,
जेहड़ियां खालसे ने तेगां मारियां ने।
शाह मुहम्मदा इक सरकार बाझों,
फौजां जित्त के अन्त नूं हारियां ने।

युद्ध में होने वाले विनाश का कवि के मन पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा है। वह स्थान-स्थान पर संसार की नश्वरता का चित्र अंकित करता चलता है। ऐसे चित्रों में करुण तथा शान्त रस की अवस्थिति है। काव्य का प्रारम्भ ही शान्त रस से होता है —

ऐसे आदमी नूं दुनियां मोह लैंदी,
दगे बाज दा यार के भेस सीदी।
सदा नहीं जवानी ते ऐश माणे,
सदा नहीं जे बाग बहार सीदी।
सदा नहीं जे दौलतां, फौज घोड़े,
सदा नहीं जे राजियां देस सीदी।
शाह मुहम्मदा सदा ना रूप दुनियां,
सदा रहिन ना काफले वेस सीदी।

काव्य में वीर रस का भी अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। युद्ध के दृश्यों में योद्धाओं का परस्पर भिड़ना युद्ध के लिये प्रस्थान करते हुए सैनिकों का उत्साह अत्यन्त सुन्दर शब्दों में अभिव्यंजित हुआ है। उदाहरण देखिये :—

(१) सिंघ सूरमे प्राण मैदान लये,
गंज लाह सुटे इनां गोरियां दे।

(२) शाह मुहम्मदा ऐसीयां लैंस होइयां,
बिजली वांग जिउँ देन दिखालियां जी।

कवि को वर्णनों में विशेष रूप से सफलता मिली है। काव्य में सर्वत्र एक तीव्र प्रवाह है। कवि जो भी कहना चाहता है, वह उसकी लेखनी से स्वतः ही लिखा जाता है। काव्य का मुख्य गुण स्वाभाविकता तथा सजीवता है। कवि की भाषा ठेठ तथा सरल है। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से कवि बचता रहा है। आवश्यकता पड़ने पर कवि ने अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी प्रयुक्त किये हैं। उदाहरण के लिए कम्पनी, अफसर, कौंसिल, पलटन आदि शब्दों को उद्धृत किया जा सकता है। कवि का ध्यान विशेष रूप से भाषा की सरलता की ओर रहा है। कवि छन्दों के प्रयोग में भी सफल रहा है। मात्राओं का योग लगभग समान ही रहता है। काव्य में अलंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक तथा सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति, दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। एक-दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :—

(३) धरती वड्ढके घूड़ दे वणे बद्दल,
जैसे चढ़े अकाश पतग मीयाँ।

काव्य का सबसे अधिक महत्त्व तात्कालिक युग की सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था का चित्रण करने में है। कवि ने ऐतिहासिक युद्ध का सत्यता-पूर्ण चित्रण करके काव्य को ऐतिहासिक भी बना दिया है।

अमाम बक्श

इनका जीवन काल सन् १७७८ ई० से सन् १८६३ ई० तक माना जाता है। यह सियालकोट के रहने वाले थे। जाति के कुरंशी थे तथा बढई का कार्य किया करते थे। अधिक पढ़े-लिखे नही थे। इनके नाम से अनेक रचनाएँ बनायी जाती हैं —

(१) शाह बहराम, (२) लैला-मजनू, (३) गुल सनोवर, (४) चन्दर-बदन, (५) गुल-बदन, (६) बदीह अलमाल, (७) मुनाजात मीयाँ आदि।

इन सभी रचनाओं में 'शाह बहराम' तथा 'चन्दर-बदन' ही कुछ अच्छी कही जा सकती हैं। शेष का कोई विशेष स्तर नही है।

मूल्यांकन—कवि को बहुत ही सामान्य स्तर का कवि कहा जा सकता है। कविता का विषय, कहानी, कलात्मकता, पात्रों का चरित्र, शैली तथा भाषा सभी सामान्य स्तर के हैं। कहानी का न कोई उद्देश्य ही है तथा न स्तर ही। कवि ने प्रेम को प्रधान स्थान दिया है, परन्तु काव्य मे न तो प्रेम के मार्मिक चित्र ही हैं, न विरह की तड़प। पाठक एक प्रकार से काव्य का आस्वादन अलिप्त भाव से करता है। दुर्भाग्यवश कवि को भावुक हृदय नहीं मिला है। अनुभूति के अभाव ने काव्य के

रागात्मक प्रभाव को बहुत ही क्षीण कर दिया है।

काव्य की भाषा सरल है। ठेठ भाषा होते हुए भी कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। सामान्य जीवन की भाषा को ही काव्य में स्थान दिया गया है। फ़ारसी के शब्दों को काफ़ी प्रयुक्त किया गया है। काव्य किसी भी दृष्टि से सुन्दर नहीं कहा जा सकता। दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) हीरे पन्नें लाल जवाहर जड़े होए विच कन्धाँ।
चमकण महल मुनारे दूरों, सूरज थीं दाह चंदाँ।

(२) चूनी नैण हुसन वानो दे भाहे संजर त्रिखे।
सुरमा पाण चढो जिस वेले, कतल वधेरी सिखे।

मटक

मटक का जन्म तथा मृत्यु के समय का पता नहीं चलता। इन्होंने 'जग मिधा ते फरगियाँ' नामक वार काव्य की रचना की है। काव्य में वीर रस की प्रधानता है। ऐतिहासिकता का पालन इसमें शाह मुहम्मद के काव्य से भी अधिक हुआ है। कवि लड़ाई का कारण अंग्रेज़ों की महाराज रणजीतसिंह जी के सतलुज के पार के प्रदेश पर कुदृष्टि को बताता है, तथा हार का कारण पूर्वी तथा डोगरे सरदारों के विश्वासघात को। आधुनिक ऐतिहासिक खोजों के अनुसार ये बातें सत्य सिद्ध होती हैं। इस प्रकार इस काव्य का ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है।

कवि ने युद्ध से भागने वाले लालसिंह तथा उसकी सेना की निन्दा की है। देश के लिये मरने वाले वीरों की प्रशंसा की है। कवि विस्तार से बचता रहा है। कवि में भाव की तीव्र अनुभूति है। वह इस तीव्र अनुभूति को सीधे तथा सरल ढंग

से अभिव्यक्त करता है। वर्णन विशेष रूप में सुन्दर बन गये हैं। भाषा सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाली सीधी-सादी ही है। फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं। कवि का अलंकार आदि की ओर ध्यान नहीं रहा। डेउढ छन्द का प्रयोग किया गया है। शैली में एक प्रवाह है। कवि लम्बी-चौड़ी भूमिका नहीं बांधता। किसी भी बात का सीधा वर्णन करता है। विश्वासघातियों की निन्दा तथा वीरों की प्रशंसा में सम्बन्धित दो उदाहरण इस प्रकार हैं —

(१) दौड़ दियां नूं शरम ना आई,
कीती जान पियारी, इहो विचारी।
तोलां तकड़ी लैण रुपये,
भरी सन्दूकचीं भारी, पंज हजारी।
घर विच बैठे इनाम वधाउण,
रण विच पीठ दिखाई लाज विसारी।
कहत मटक लड़ मरन सूर मे,
जरा ना हटण पिछाड़ी, होण अगाड़ी।

(२) वोवें पिरी तम्बूर गडक्के,
जुध की भई तियारी, लशकर भारी।
धजण तुरमजन और नुरलियां,
मुपरी रण के मारी मधक दियारी।

भाई वीरसिंह

भाई वीरसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह जी की स्तुति में एक बारामाह लिखा है। यह वीर रस का काव्य है। वीर रस की अभिव्यक्ति इसमें अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। वर्णन तो विशेष रूप में प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक बन पड़े हैं। घनबागों का

रागात्मक प्रभाव को बहुत ही क्षीण कर दिया है।

काव्य की भाषा सरल है। ठेठ भाषा होने हुए भी कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। सामान्य जीवन की भाषा को ही काव्य मे स्थान दिया गया है। फ़ारसी के शब्दों को काफ़ी प्रयुक्त किया गया है। काव्य किसी भी दृष्टि से सुन्दर नहीं कहा जा सकता। दो उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) हीरे पन्ने लाल जवाहर जड़े होए विच कन्धां।
चमकण महल मुनारे दूरों, सूरज थीं दाह चंदां।
(२) नूर्नी नैण हुसन वालों दे म्राहे मंजर त्रिवर्ते।
सुरमा पाण चढ़ो जिस वेले, कतल बचेरी मिसे।

मटक

मटक का जन्म तथा मृत्यु के समय का पता नहीं चलता। इन्होंने 'जंग सिंघा ते फरंगियां' नामक वार काव्य की रचना की है। काव्य में वीर रस की प्रधानता है। ऐतिहासिकता का पालन इसमें शाह मुहम्मद के काव्य से भी अधिक हुआ है। कवि लड़ाई का कारण अंग्रेज़ों को महाराज रणजीतसिंह जी के सतलुज के पार के प्रदेश पर कुदृष्टि को बताता है, तथा हार का कारण पूर्वी तथा डोगरे सरदारों के विश्वासघात को। आधुनिक ऐतिहासिक खोजों के अनुसार ये बातें सत्य सिद्ध होती हैं। इस प्रकार इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ जाता है।

कवि ने युद्ध से भागने वाले लालसिंह तथा उसकी सेना की निन्दा की है। देश के लिये मरने वाले वीरों की प्रशंसा की है। कवि विस्तार से बचता रहा है। कवि में भाव की तीव्र अनुभूति है। वह इस तीव्र अनुभूति को सीधे तथा सरल ढङ्ग

से अभिव्यक्त करता है। वर्णन विशेष रूप से सुन्दर बन गये हैं। भाषा सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाली सीधी-सादी ही है। फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं। कवि का अलंकार आदि की ओर ध्यान नहीं रहा। डेउढ छन्द का प्रयोग किया गया है। शैली मे एक प्रवाह है। कवि लम्बी-चौड़ी भूमिका नहीं बाँधता। किसी भी बात का सीधा वर्णन करता है। विश्वासघातियो की निन्दा तथा वीरो की प्रशंसा से सम्बन्धित दो उदाहरण इस प्रकार हैं —

(१) दौड दियाँ नूं शर्म ना आई,
कीती जान पियारी, इहो विचारी।
तोलो तकडी लैण रुपये,
असी सन्दूकचो भारी, पंज हजारी।
घर विच बैठे इनाम वधाउण,
रण विच पीठ दिखाई लाज विसारी।
कहत मटक लड मरन सूर मे,
जरा ना हटण पिछाडी, होण अगाड़ी।
(२) दोवें धिरो तम्बूर खड़कदे,
जुध की भई तियारी, लशकर भारी।
बजण तुरमजन, और मुरलियाँ,
मुयरी रण के सारी अधक पियारी।

भाई वीरसिंह

भाई वीरसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह जी की स्तुति में एक बारामाह लिखा है। यह वीर रस का काव्य है। वीर रस की अभिव्यक्ति इसमें अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। वर्णन तो विशेष रूप से प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक बन पड़े हैं। अलंकारों का

भी यथा-स्थान सुन्दर प्रयोग किया गया है। शब्दों में शस्त्रों की झंकार को अभिव्यक्त करने की शक्ति है। भाषा बड़ी ही सजीव तथा प्रवाह युक्त है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

चढ़ियाँ फौजां जिउँ घट काली।
शबदा सार जिउँ अहिरण हाली।
काइर जरदी सूरमां लाली।
मारन शसतर सिंघ अकाली।

गद्य साहित्य

इस काल मे गद्य के क्षेत्र में कोई विशेष रचना नहीं हो सकी। किसी भी भाषा के विकास के लिये राजकीय प्रोत्साहन एक महत्त्वपूर्ण आधार होता है। सिक्खों का राज्य हो जाने पर भी राजकीय काम-काज की भाषा फारसी ही थी। इसके साथ-साथ शिक्षा का माध्यम भी फारसी ही रहा। परिणाम-स्वरूप पंजाबी के गद्य साहित्य की उन्नति की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया। कुछ साहित्यकारों ने अपने पुराने ढंग पर ही साहित्य रचना की।

इस काल में ईसाइयों ने बाइबल का अनुवाद पंजाबी भाषा में करवाया। परन्तु यह अनुवाद मलवई बोली में था। इससे गद्य के स्वरूप या भाषा के विकास में कोई विशेष सहारा नहीं मिला। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इस काल के गद्य की भाषा पूर्वकालिक गद्य की भाषा से अधिक विकसित है। इस काल की गद्य रचनाओं को इस प्रकार दिखाया जा सकता है —

(१) सन् १८१५ ई० में ईसाई पादरियों के द्वारा कराया गया बाइबल का अनुवाद उपलब्ध होता है। भाषा मलवई

बोली है। उदाहरण इस प्रकार है :—

'ते उन्ही दिणा अजिहा होया उह पहाड उते दुआ मंगण गिया, ते खुदा अगे दुआ मंगदियाँ रात कटी।'

(२) किशोरदास ने भगवत गीता का माहात्म्य लिखा, गुरुवाणी की भी अनेक टीकाएँ प्रस्तुत की गयी।

(३) महाराजा रणजीतसिंह की डायरी इस काल की रचना है। इसकी भाषा आधुनिक भाषा के अधिक निकट है। सादा ढंग से प्रत्येक बात का वर्णन किया गया है। भाषा में कलात्मकता नही पायी जाती। उदाहरण इस प्रकार है —

'सम्मत १८६२ मघर दी बवोवी मगलवार मरहटा जसवंत राये अमृतसर में आया। पाछे-पाछे फिरगी पहुता। फेर मरहटे साथ पग वटाई रणजीतसिंह ने मित्तर बणे।'

(४) सन् १८५४ ई० मे ईसाई पादरियों ने पंजाबी का कोष बनवाया।

(५) इस समय फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं से अनेक ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत किये गये। इनमे 'अदले अकबरी' तथा 'अकबर नामा' अच्छे अनुवाद कहे जा सकते हैं। 'अदले अकबरी' काफी बड़े आकार की पुस्तक है। भाषा भी सुन्दर है। दोनों ही पुस्तकों के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

'खास कारखाने विच बहुतों जो नां आतशियाँ बनवाइयाँ हुंदियाँ हन अर जो सरीदियाँ होइयाँ हुंदियाँ हन जो पेशकश याने नजरां आइयाँ होइयाँ।' (अदले अकबरी)

'जद बादशाह आ उतरन तद दरबार गुलाब दा अर निम्बुआँ दा सत्तमझा बरफ नाल सरद करके अगे रखण।'

(अकबर नामा)

अध्याय ८

आधुनिक काल

पंजाबी साहित्य में आधुनिक काल सन् १८६० ई० से प्रारम्भ होता है। इस काल में पंजाब ही क्या, सारे भारत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। जहाँ देश ने अनेक नुकसान उठाये, वहाँ अनेक प्रकार की नयी वस्तुएँ भी निर्मित हुईं। इन सभी परिवर्तनों को क्रमशः निम्नानुसार दिखाया जा सकता है।

राजनीतिक—सन् १८४६ ई० में अंग्रेजों का पंजाब पर अधिकार हो चुका था। परन्तु अभी भी पंजाबवासियों के हृदय में स्वतन्त्रता प्राप्त करने का उत्साह बाकी था। सन् १८५७ ई० में देशव्यापी स्वतन्त्रता-संग्राम छिड़ा, परन्तु सिक्खों तथा डोगरों की सेनाओं ने अंग्रेजों की सहायता की। दूसरी ओर भारत-वासियों का यह प्रयास सुसंगठित नहीं था। परिणामस्वरूप भारतवासियों की हार हुई। अंग्रेजों ने एक-एक करके सभी प्रदेश विजित कर लिए। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को खोज-खोज कर फाँसी पर चढ़ाया गया। धीरे-धीरे यह संग्राम ठण्डा पड़ गया और लोगों में फैला उत्साह भी दब गया। अंग्रेजों ने भी भारत को अपने आधीन रखने के लिये 'बाँटो और खाओ' की नीति अपनायी। परन्तु फिर भी देश का चेतन मस्तिष्क अभी निष्क्रिय नहीं हुआ था। वह चाहे शक्ति तथा समर्थन के

अभाव में चुप बैठा हुआ था, परन्तु फिर भी अंग्रेजों की प्रत्येक चाल का वह सूक्ष्म अध्ययन कर रहा था। धीरे-धीरे इस चेतन मस्तिष्क का विकास होता रहा। देश के विचारवान प्रौढ़ मस्तिष्कों ने सामाजिक तथा धार्मिक सभाओं के द्वारा, विशिष्ट साहित्यिक धाराओं के रूप में जनता को सचेत करना प्रारम्भ किया। इन धाराओं मे सर्वप्रथम 'नामधारी लहर' का नाम आता है। सन् १८६२ ई० मे इसकी स्थापना हुई। वैसे तो यह धार्मिक लहर थी, परन्तु इसका अधिकाश कार्य राजनीतिक ही था। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा अंग्रेजों के साथ असहयोग, इसके विशेष रूप से दो कार्य कहे जा सकते है। इसी प्रकार 'सिंघ सभा लहर' तथा 'अकाली लहर' का भी आविर्भाव हुआ। इन लहरों ने जहाँ अनेक साहित्यकार उत्पन्न किये, वहाँ राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य किया। बाद मे पंजाब मे कांग्रेस, कम्युनिस्ट, गदर पार्टी, बब्बर पार्टी आदि अनेक पार्टियों की स्थापना भी हुई। इन पार्टियों ने भी राजनीतिक क्षेत्र में काफ़ी कार्य किया। अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संग्राम शारीरिक क्षेत्र मे न रह कर मानसिक तथा भावात्मक हो गया। अंग्रेजो से असहयोग, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रचार, सत्याग्रह-आन्दोलन, स्वयं हाथ से सूत कात कर खादी बनवाने तथा खादी का ही उपयोग करने पर बल दिया जाने लगा। सोयी हुई जनता को जगाने का यत्न किया जाने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए इस प्रकार का असहयोग आन्दोलन सारे देश मे ही प्रारम्भ हुआ। अन्त मे अंग्रेजों को विवश होकर अगस्त १९४७ ई० मे भारत छोड़ना पड़ा। परन्तु जाते-जाते भी वे भारत के दो टुकड़े—भारत तथा पाकिस्तान के रूप में—कर गये। इस विभाजन मे पंजाब के भी दो भाग हो

गये। परन्तु जाने से पूर्व अंग्रेज़ भारत की दो बड़ी जातियों में जो भयंकर वैमनस्य फैला गये थे, उसने भयंकर परिणाम दिखाया। पाकिस्तान में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार किये। फलस्वरूप लाखों की संख्या में हिन्दू तथा सिक्ख भारत में आश्रय प्राप्त करने के लिये भाग आये। उनकी करुण गाथा सुनकर यहाँ के निवासियों में भी उत्तेजना फैली। इसके साथ ही भारत में बसे मुसलमानों ने भी एक सुनियोजित योजना के रूप में उपद्रव मचाये। परिणामस्वरूप यहाँ भी हिन्दुओं तथा मुसलमानों में संघर्ष हुआ। लाखों व्यक्ति इस संघर्ष में मारे गये। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गयी। इसके बाद सिक्खों में हिन्दुओं से पृथक् होने की भावना पनपी। अनेक प्रसिद्ध सिक्ख नेताओं ने भाषा को आधार बनाकर पृथक् पंजाबी सूबे की माँग की। अपनी इस माँग को मनवाने के लिए हर प्रकार के उपाय कार्य में लाये गये। भूख-हड़तालें तक की गयीं। परन्तु पंजाब की जनता ने बहुमत से इस माँग का विरोध किया तथा (विरोध में भी) अनेक व्यक्तियों ने भूख-हड़तालें की। फलस्वरूप पंजाब अभी तक विभाजन से बचा हुआ है।

सामाजिक—अंग्रेजों के आने से पूर्व महाराजा रणजीतसिंह के राज्य में हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्ख आदि में किसी प्रकार का भेदभाव न था। परन्तु अंग्रेजों ने अपने शासन को दृढ़ करने के लिए जो 'बाँटो तथा खाओ' की नीति अपनायी, इसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ने लगा। पंजाब में सम्प्रदाय के आधार पर अनेक संस्थाएँ बनी, जिनका उद्देश्य जाति विशेष के हितों की रक्षा करना था। उदाहरण के लिए 'सिंघ सभा', 'अकाली लहर', 'अहमदिया लहर', 'ब्रह्म समाज' आदि का नाम लिया जा सकता है।

अंग्रेजों ने पंजाब को तार, डाकखाना, टेलीफोन, रेल आदि की सुविधाएं प्रदान की। बहुत-सी सड़कों, नहरों आदि की भी व्यवस्था की। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने ध्यान दिया और अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य कर दी। अंग्रेजी साहित्य का समाज के नये रक्त पर प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप नयी पीढ़ी में तार्किक बुद्धि का विकास हुआ और अन्धानुकरण छोड़कर प्रत्यक्ष बात को मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी। समाज की प्राचीन रूढ़ियां तथा मान्यताएं अब पहले की भांति आंख मूंद कर स्वीकार नही की जाती थीं। विश्लेषण करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती थी। इसके साथ ही आर्य समाज आदि के प्रचार के फलस्वरूप लोगों मे शिक्षा प्राप्ति की ओर रुचि बढ़ने लगी थी। पहले लडकियो को शिक्षा प्राप्ति का अवसर नही दिया जाता था, परन्तु अब धीरे-धीरे उन्हे भी शिक्षा दी जाने लगी थी। लडकियो के लिये आर्य समाज ने कई स्कूल खोले। इतना ही नहीं, पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त सरकार की ओर से स्कूलो के लिये शिक्षा विभाग तथा पाठ्यक्रम निर्धारित करने वाले विभाग खोले गये।

पहले पंजाब में जागीरदारी थी। परन्तु अब जागीरदारी समाप्त हो गयी थी। इसके स्थान पर पूंजीवादी समाज का निर्माण हो रहा था। पंजाब में अनेक स्थानों पर कारखाने स्थापित किये गये। कारखानो के आस-पास श्रमिक वर्ग के गांव बस जाते थे। धन का एकत्रीकरण पूंजीपतियों के पास होता जाता था। श्रमिक वर्ग को तो निर्वाह करना भी कठिन होता था।

अंग्रेजों के साथ पादरियों का तथा ईसाई मिशनरियों का समूह भी भारत में आया। इस वर्ग को अंग्रेजों की ओर से

पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती थी। यह वर्ग अशिक्षित ग्रामीण जनता तथा अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों को आर्थिक सहायता देकर, ऊँची नौकरियों का प्रलोभन देकर, धर्मभीरु परन्तु विलासी जीवों को यह लालच देकर कि ईसाई होने पर खुदा का बेटा ईसा सहायता करेगा, परमात्मा के दण्ड से उन्हें बचायेगा तथा उनके सभी पाप क्षमा करवा देगा, ईसाई बना रहा था। अशिक्षित जनता इनके प्रलोभन में आकर धड़ाधड़ ईसाई बनती जा रही थी। आर्य समाज, सिंघ सभा आदि संस्थाएं इनका सामना कर रही थी, और जनता को सच्चे मार्ग का ज्ञान दे रही थीं, परन्तु ये राजकीय सहायता के अभाव में इन ईसाई मिशनरियों के प्रभाव को सर्वथा निर्मूल करने में असमर्थ थी। इन संस्थाओं ने पंजाब के सामाजिक जीवन में व्याप्त सभी प्रकार की कुरीतियों को, मिथ्याडम्बरों को तथा आचारहीनता को जड़ से ही उखाड़ने का यत्न किया। ये संस्थाएं अपने उद्देश्य में काफी अंश तक सफल भी हुईं। इन संस्थाओं के कारण पंजाब के जन-जीवन में एक चेतनता सी आयी। सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता युद्ध की असफलता से व्याप्त निराशा को भी इन्होंने दूर कर दिया। परिणामस्वरूप जब स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी ने असहयोग-आन्दोलन तथा सत्याग्रह आरम्भ किया तो पंजाब ने भी उसमें योग-दान दिया था। पंजाब में भी कांग्रेस का झण्डा बोलबाला था।

आर्थिक—अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार किया तो यहाँ अनेक प्रकार के सुधार भी किये, रेल, तार आदि की सुविधाएँ भी प्रदान कीं, परन्तु इस देश को वे कभी अपना नहीं समझ सके। उनके प्रत्येक कार्य के पीछे एक ही उद्देश्य था कि किस

प्रकार से भारत को चूसा जाये। भारत की जो भी वस्तु उन्हें अच्छी लगी, उसे वे या तो इंगलैण्ड ले गये, या फिर नष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने पंजाब तथा देश के दूसरे भागों से अधिक से अधिक कच्चा माल प्राप्त करके इङ्गलैण्ड भेजा तथा वहाँ से तैयार माल भारत की मंडियों में भरा। यों भारत में भी अनेक कल-कारखाने बने, परन्तु उन्हीं वस्तुओं के जिनके तैयार करने में अधिक लाभ की आशा नहीं थी। चाय, कपास, पटसन आदि को कच्चे रूप में ही वे इङ्गलैण्ड भेज देते थे। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रकार से वे भारतवासियों का रक्त चूसने में संलग्न थे। भारत की इस दुर्दशा तथा बढ़ती हुई गरीबी की ओर हिन्दी के अनेक लेखकों ने जनता का ध्यान आकर्षित किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उक्तियाँ भारत की इस दशा को भली प्रकार से व्यक्त करती हैं :—

> अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
> पै धन विदेश चली जात यह अति ख्वारी॥

धन की कमी के कारण सामान्य जनता निर्धन होती जा रही थी। जागीरदारी प्रथा समाप्त ही हो चुकी थी। समाज पूँजीपति तथा श्रमिक, इन दो भागों में बँटता जा रहा था।

साहित्यिक—उपर्युक्त सभी परिस्थितियों का पंजाबी साहित्य पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा। सर्वप्रथम तो जागीरदारी समाप्त होने के कारण कवियों तथा अन्य साहित्यकारों का आश्रय समाप्त हो गया। परिणामस्वरूप कवियों ने अब जनता को ही अपना आश्रयदाता बनाया। साहित्य व्यक्ति विशेष से सर्वसाधारण की ओर उन्मुख हुआ। जनता का दुःख-दर्द, जनता के अभाव, जनता जनार्दन के जीवन के साकार चित्र कवियों की कविता के विषय बने।

पंजाबी साहित्यकारों पर दूसरा प्रभाव अंग्रेजों की पार
नीति का पड़ा। पंजाब निवासियों ने अपने-अपने धर्म के आ
पर भाषा विशेष के सम्बन्ध में सोचना प्रारम्भ कर दि
मुसलमानों ने उर्दू को, सिक्खों ने पंजाबी को तथा हिन्दुओं
हिन्दी को ही अपनी भाषा स्वीकार किया। प्रत्येक वर्ग अप
भाषा को सर्वोत्कृष्ट समझता था।

अंग्रेजों के आगमन के कारण तीसरा प्रभाव पंजाबी भ
पर बहुत अच्छा पड़ा। वह प्रभाव यह कि अंग्रेजी शिक्षा अ
वार्य कर देने से पंजाबी के नवोदित कलाकारों ने अंग्रे
साहित्य का अध्ययन किया। फलस्वरूप उनके विचारों में प
वर्तन आया। उन्होंने आधुनिक दृष्टिकोण से सोचना प्रारं
किया। उनमें जहाँ अपनी भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ, व
प्राचीन के प्रति अनुसधान की भावना उत्पन्न हुई। किसी
बात को मानने से पहले उसके सार को समझने की जिज्ञास
उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध
खोजें प्रारम्भ हो गयीं। सन् १८६४ ई० में लाहौर में भाषाओं
ऊपर अध्ययन करने के लिये 'ओरियण्टल कॉलिज' की स्थापन
हुई। सन् १८८२ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय की नींव रखी
गयी। पंजाबी में भी एम० ए० स्तर की पढ़ाई प्रारम्भ हुई।

इस काल की चौथी विशेषता छापेखाने का प्रारम्भ होन
है। सर्वप्रथम सन् १८४६ ई० में लुधियाना में ईसाई मिशनरियों
ने पंजाबी का टाइप तैयार किया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे
लाहौर, अमृतसर आदि में पत्थर के छापेखाने प्रारम्भ हो
गये। छापेखाने प्रारम्भ हो जाने के कारण जहाँ पहले किसी
भी पुस्तक की एक-दो प्रतियाँ ही लिखी जाती थीं, वहाँ अब
पुस्तकें सहस्रों की संख्या में छपने लगीं। साहित्य जन-सुलभ

वस्तु बन गया। इसका सबसे अधिक प्रभाव गद्य साहित्य पर पड़ा। गद्य साहित्य का विषय जो अभी तक विकसित नहीं हो सका था, छापेखाने के कारण इसमें भी धड़ा-धड़ साहित्य-रचना होने लगी। स्कूलों में पढ़ाने के लिए गद्य में पाठ्य-पुस्तकें भी प्रस्तुत की जाने लगीं। भारतीय गद्य साहित्य पर अंग्रेज़ी के गद्य साहित्य का भी प्रभाव पड़ा। पंजाबी का गद्य जो कि अभी तक अनुवादों, जीवन घटनाओं के संकलनों तथा धार्मिक पुस्तकों की व्याख्या तक ही सीमित था, अब नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, लेख, समालोचना, जीवनियाँ तथा इतिहास के रूप में विकसित हो उठा। गद्य साहित्य की सभी विधाओं पर अंग्रेज़ी-साहित्य का प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ा। पंजाबी से पहले यह प्रभाव बंगला तथा हिन्दी पर पड़ चुका था। पंजाबी के कुछ साहित्यकारों ने जहाँ अंग्रेज़ी भाषा में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के कारण यह प्रभाव ग्रहण किया, वहाँ अधिकांश साहित्यकारों ने हिन्दी तथा बंगला आदि प्रान्तीय भाषाओं से भी प्रभाव ग्रहण किया।

इस काल में अनेक प्रकार की सभाएँ भी बनीं। इन सभाओं ने जहाँ सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में कार्य किया, वहाँ साहित्य के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय योग दिया। इन सभाओं तथा लहरों में मुख्य रूप से 'नामधारी लहर', 'अकाली लहर' तथा 'सिंघ सभा लहर' का नाम लिया जा सकता है। इन मुख्य लहरों के अतिरिक्त कांग्रेस, कम्युनिस्ट, गदर पार्टी आदि अनेक छोटी-छोटी लहरें भी पंजाब में विकसित हुईं। पंजाबी साहित्य के लगभग सभी श्रेष्ठ साहित्यकार तथा समालोचक इन लहरों की उपज कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए भाई वीरसिंह, डॉ० चरणसिंह,

भाई मोहनसिंह, हीरासिंह दरद, फीरोज दीन शरफ़, गुरमुख सिंह मुसाफ़िर, विधातासिंह तीर आदि का नाम लिया जा सकता है।

इस काल में अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप जनता में अध्ययन की ओर रुचि बढ़ने लगी। जनता को भी मनोरंजक साहित्य पढ़ने का अधिक चाव था, परन्तु उसकी रुचि इतनी परिष्कृत नहीं हुई थी कि वह उच्च कोटि के साहित्य को समझ सके। जनता की रुचि का ध्यान रखते हुए अनेकों ग्रामीण लेखकों ने प्रेम-कथा काव्य आदि को प्राचीन परिपाटी पर जनता की ही सामान्य भाषा में साहित्य प्रस्तुत किया। इस साहित्य में सामान्यतः दो ही बातें प्रधान होती थी—उपदेश या प्रेम-भावना।

पंजाबी के पद्य साहित्य में भी विधा, विषय, शैली आदि की दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुए। प्रायः लम्बे-लम्बे प्राचीन छन्दों के स्थान पर नये छोटे-छोटे छन्द अपनाये गये। इन नवीन काव्य रूपों में—उदाहरण के लिये चौपदे, गीत, अतुकान्त कविता आदि का नाम लिया जा सकता है। संक्षेप में इस काल के साहित्य को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

पद्य काव्य—इतिवृत्तात्मक कविता, रहस्यवादी कविता, प्रेम प्रधान कविता, राष्ट्रीय कविता, हास्य रस की कविता, नवीन वादों से प्रभावित कविता आदि।

गद्य काव्य—उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, जीवनी, यात्रा-वृतान्त, साहित्यिक समीक्षाएँ तथा अनुसन्धान आदि।

आधुनिक कविता

जैसाकि पूर्व ही कहा जा चुका है, इस युग में साहित्यकारों का अधिक ध्यान गद्य साहित्य की ओर रहा। परिणामस्वरूप गद्य काव्य का जितना सृजन इस काल में हुआ, उतना पद्य काव्य का नहीं हुआ। फिर भी अनेक उत्कृष्ट कोटि के कवि इस काल में उपलब्ध होते हैं। इस काल की समस्त कविता का परिचय पृथक्-पृथक् क्रमशः इस प्रकार दिया जा सकता है :—

(१) इतिवृत्तात्मक कविता—आधुनिक काल के प्रारम्भ से लेकर लगभग समस्त १९वीं शती की कविता को इतिवृत्तात्मक कविता कहा जा सकता है। आधुनिक काल में जहाँ आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से, छापेखाने के प्रभाव से तथा अन्य अनेक प्रभावों से कविता के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए, वहाँ ग्रामीण कवियों में—जो कि अधिक संख्या में थे—कविता की वही प्राचीन पद्धति प्रचलित रही। वही पुराने विषय, वही पुराने भाव तथा वही पुरानी शैली उन्होंने अपनाये रखी। इसका एक कारण यह भी था कि एक ओर तो ग्रामीण जनता में भी अब पढ़ने की रुचि बढ़ने लगी थी तथा दूसरी ओर छापेखाने की उपलब्धि ने साहित्य को जन-सुलभ बना दिया था। ग्रामीण जनता की रुचि के अनुकूल होने के कारण ग्रामीण तथा सर्व-साधारण में इस साहित्य का बड़ा सम्मान हुआ। इस साहित्य का विषय वही पुराना—हीर-राँझा, सोहनी-महीवाल, सस्सी-पुन्नू, मिरज़ा-साहिबाँ, यूसफ़-जुलेखा, लैला-मजनूँ, पूरन भगत, गोपीचन्द, राजा भरतरी आदि—था। पहले कवियों जैसा कवित्व न होने के कारण इस साहित्य में इतिवृत्तात्मकता अत्यधिक मात्रा में आ गयी थी।

छन्द तथा शैली भी वही पुरानी थी। अभिव्यक्ति के ढंग में भी नवीनता का अभाव था। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि तथा उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

१. मुहम्मद बूटा—पंज-गंज।
२. गियानदास—काफियाँ तथा सीहरफी।
३. भगवानसिंह—हीर।
४. गियान चन्द धवन—जैमल, पत्ता तथा हकीकत राय पर काव्य लिखा।
५. दमदम—हीरियाँ दी खान।
६. जोगसिंह—हीर।
७. ईश्वरसिंह—काफियाँ।
८. जमालसिंह—कुलयात जमाल।
९. मौला बख्श कुश्ता—हीर तथा दीवान गजलीयात लिखा है।
१०. अकाल मुहम्मद जोगी—मजमूहा काफियाँ हिन्दी।

(२) रहस्यवादी कविता—यह कविता प्रायः आधुनिक पंजाबी कविता प्रवर्तकों के द्वारा रची गयी। भाई वीरसिंह, डॉ० मोहनसिंह आदि इस धारा के विशेष कवि हैं। कवि लौकिक विषय को इस रूप में चित्रित करता है कि उसका आध्यात्मिक अर्थ भी साफ ध्वनित होता है। विषय तथा भाव की दृष्टि से इस कविता का विशेष महत्त्व है। भावात्मकता इस कविता में अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। प्रायः कविताएँ गीत के रूप में हैं। राणा सूरतसिंह आदि एक-दो प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये हैं। पवित्र तथा आध्यात्मिक प्रेम इसमें सर्वत्र छलकता रहता है। कवि निजी अनुभूति की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता देता है। फिर भी इस कविता में कवि का

प्रपनापन कहीं भी प्रगट नहीं होता। किन्तु धर्म का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। धार्मिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। काव्य में वाणी की मिठास है। भाषा साहित्यिक है। अनुभूति जहाँ सघन हो जाती है, वहाँ अभिव्यक्ति में भी दुरूहता आ गयी है। कवि अनुभूति को प्रगट करने के लिए रूपकों का आश्रय लेता है। कहीं-कहीं ये रूपक लम्बे तथा दुरूह हो जाते हैं। साहित्यिकता तथा भक्ति की उच्च अनुभूति तथा कलापक्ष की समृद्धता (अलंकारिकता, शैली, छन्द विधान आदि) की दृष्टि से यह साहित्य पूर्व कालिक सभी प्रकार के भक्ति-साहित्य से श्रेष्ठ है।

(३) प्रेम प्रधान कविता—यह कविता भी आधुनिक युग की उपज है। इस कविता के प्रसिद्ध कवि प्रो० पूरनसिंह, ला० धनीराम चात्रक, ला० कृपासागर आदि है। इस कविता का मुख्य विषय किसी वस्तु के प्रति कवि की निजी प्रेम भावना है। यह प्रायः देश के प्रति है। पंजाब के नदी-नाले, पर्वत, झरने, प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त सुन्दर भाषा में वर्णन किया है। कवि की निजी अनुभूति, भावों की तीव्रता, प्रकृति का आलम्बन तथा उद्दीपन रूप में सुन्दर चित्रण, भाव का उन्मुक्त प्रवाह तथा भाषा की सरलता इस कविता के विशेष गुण हैं। इस कविता के कारण पंजाब निवासियों में अपने देश, अपनी भाषा तथा अपनी सभ्यता आदि के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। कलात्मक दृष्टि से भी यह सुन्दर कविता है। पंजाबी साहित्य में इसका विशेष स्थान है।

(४) राष्ट्रीय कविता—अंग्रेजों की आधीनता के परिणामस्वरूप पंजाबवासियों में अपने देश की स्वतन्त्रता का भाव उदय हुआ। ज्ञानी हीरासिंह दरद की रचना दरद

सुनेहे', ज्ञानी गुरमुखसिंह की रचनाएँ 'जीवन पंध' तथा
दे बाण', दरशनसिंह आवारा की रचनाएँ 'बगावत'
'मैं बागी हाँ' तथा शीला भाटिया की रचनाएँ विशेष
से प्रसिद्ध हैं। इस कविता में जहाँ स्वाधीनता के लिये
है, वहाँ उन सभी प्रवृत्तियों तथा रीति-रिवाजों का खण्ड
किया गया है, जो देश की उन्नति में बाधक सिद्ध हुई। अ
की आवश्यकताएँ, उनके कष्ट, उनके जीवन का सच्चा चि
इस कविता में उपलब्ध होता है। शीला भाटिया ने लोक
की लय पर कविता रचना की है। काव्यमयता तथा भ
का प्रवाह इस कोटि की कविता में पर्याप्त मात्रा में उप
होता है।

(५) हास्य रस की कविता—आधुनिक काल में
हास्य रस के कवि भी हुए हैं। इन कवियों में सरदार ए
एम० चरणसिंह को उनकी रचना 'बादशाहियाँ' के का
काफी ख्याति मिली है। ये अपनी कविता में कहानी को
ढग से प्रस्तुत करते हैं कि उससे हास्य उत्पन्न होने लगता
परन्तु वर्णन में स्वाभाविकता एवं प्रवाह है। भाषा इन
साहित्यिक तथा अत्यन्त मधुर है। इनके अतिरिक्त आजक
सरदार ईश्वरसिंह 'ईश्वर' भी काफी प्रसिद्ध हैं। इन
रचनाएँ 'भाइया' तथा 'रंगीला भाइया' हैं। ये साहित्यिक
की दृष्टि से इतनी सुन्दर नहीं हैं, जितनी सरदार चरणसि
की।

(६) नये वादों से प्रभावित कविता—उपरोक्त वर्णि
काव्य-धाराओं के अतिरिक्त पंजाबी साहित्य में कवियों क
एक बड़ा समूह नये-नये वादों से प्रभावित होकर कविता
क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग प्रस्तुत कर रहा है। ये प्रयोग विषय

शैली तथा अभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से होते हैं। इस कविता का प्रचार विशेष रूप से भारत के स्वतन्त्र होने के बाद हुआ है। इस कविता में कवि अहम् को प्रधान रखता है। वह जो कुछ ठीक समझता है, उसे इस संसार में मूर्तिमान देखना चाहता है। इस क्षेत्र में निम्नलिखित कवियों की रचनाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं :—

१. प्रो० मोहनसिंह की रचनाएँ—(१) सावे पत्तर, (२) कसुम्भड़ा, (३) अधवाटे, (४) कच-सच।
२. डॉ० गोपालसिंह की रचनाएँ—(१) भर्ना तथा (२) हनेरे-सवेरे।
३. सरदार प्रीतमसिंह सफीर की रचनाएँ—(१) कत्तक कूंजां, (२) रक्त बूंदां, (३) पाप दे सोहिले।
४. अमृता प्रीतम की रचनाएँ—(१) पथर गीटे, (२) लम्मियाँ वाटां।

कुछ प्रसिद्ध कवि

भाई वीरसिंह

इनका जन्म सन् १८७२ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम डॉ० चरनसिंह था। ये अमृतसर के रहने वाले हैं। डॉ० चरनसिंह अच्छे साहित्यिक थे। संगीत में भी रुचि रखते थे। उन्होंने शकुन्तला नाटक का पंजाबी में अनुवाद भी किया था। भाई वीरसिंह को साहित्य के प्रति अभिरुचि अपने पिता से ही मिली थी। ये बचपन से ही धार्मिक विद्वानों की संगत में रहे। इन पर धार्मिक प्रभाव अत्यन्त गहरा था। ये बचपन से ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।

इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा किसी सन्त से प्राप्त की थी।

मुनेहे', भानी गुरमुखसिंह की रचनाएँ 'जीवन पंध' तथा 'सबर दे बाण', दरशनसिंह आवारा की रचनाएँ 'बगावत' तथा 'मैं बागी हां' तथा ढोला भाटिया की रचनाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इस कविता में जहां स्वाधीनता के लिये तड़प है, वहां उन सभी प्रवृत्तियों तथा रीति-रिवाजों का खण्डन भी किया गया है, जो देश की उन्नति में बाधक सिद्ध हुईं। जनता की आवश्यकताएँ, उनके कष्ट, उनके जीवन का सच्चा चित्रण इस कविता में उपलब्ध होता है। ढोला भाटिया ने लोकगीतों की लय पर कविता रचना की है। काव्यमयता तथा भावों का प्रवाह इस कोटि की कविता में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

(५) हास्य रस की कविता—आधुनिक काल में कुछ हास्य रस के कवि भी हुए हैं। इन कवियों में सरदार एम० एम० चरणसिंह को उनकी रचना 'बादशाहियाँ' के कारण काफी ख्याति मिली है। ये अपनी कविता में कहानी को इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि उससे हास्य उत्पन्न होने लगता है। परन्तु वर्णन में स्वाभाविकता एवं प्रवाह है। भाषा इनकी साहित्यिक तथा अत्यन्त मधुर है। इनके अतिरिक्त आजकल सरदार ईश्वरसिंह 'ईश्वर' भी काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाएँ 'भाइया' तथा 'रंगीला भाइया' हैं। ये साहित्यिकता की दृष्टि से इतनी सुन्दर नहीं हैं, जितनी सरदार चरणसिंह की।

(६) नये वादों से प्रभावित कविता—उपरोक्त वर्णित काव्य-धाराओं के अतिरिक्त पंजाबी साहित्य में कवियों का एक बड़ा समूह नये-नये वादों से प्रभावित होकर कविता के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग प्रस्तुत कर रहा है। ये प्रयोग विषय,

शैली तथा अभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से होते हैं। इस कविता का प्रचार विशेष रूप से भारत के स्वतन्त्र होने के बाद हुआ है। इस कविता में कवि अहम् को प्रधान रखता है। वह जो कुछ ठीक समझता है, उसे इस संसार में मूर्तिमान देखना चाहता है। इस क्षेत्र में निम्नलिखित कवियों की रचनाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं :—

१. प्रो० मोहनसिंह की रचनाएँ—(१) सावे पत्तर, (२) कसुम्भड़ा, (३) अधवाटे, (४) कच-सच।
२. डॉ० गोपालसिंह की रचनाएँ—(१) झर्ना तथा (२) हनेरे-सवेरे।
३. सरदार प्रीतमसिंह सफीर की रचनाएँ—(१) कत्तक कूँजाँ, (२) रक्त बूँदाँ, (३) पाप दे सोहिले।
४. अमृता प्रीतम की रचनाएँ—(१) पाथर गीटे, (२) लम्मियाँ वाटाँ।

कुछ प्रसिद्ध कवि

भाई वीरसिंह

इनका जन्म सन् १८७२ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम डॉ० चरनसिंह था। ये अमृतसर के रहने वाले हैं। डॉ० चरनसिंह अच्छे साहित्यिक थे। संगीत में भी रुचि रखते थे। उन्होंने शकुंतला नाटक का पंजाबी में अनुवाद भी किया था। भाई वीरसिंह को साहित्य के प्रति अभिरुचि अपने पिता से ही मिली थी। ये बचपन से ही धार्मिक विद्वानों की संगत में रहे। इन पर धार्मिक प्रभाव अत्यन्त गहरा था। ये बचपन से ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।

इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा किसी सन्त से प्राप्त की थी।

में ये किसी मिशन स्कूल में पढ़े। इन्होंने दसवीं तक शिक्षा
की तथा सन् १८६२ ई० में सरदार वजीरसिंह के साथ
कर एक प्रेस खोला। सन् १८६४ ई० में इन्होंने कुछ
नों की सहायता से खालसा ट्रेक्ट सोसाइटी की स्थापना
था एक पंजाबी भाषा का साप्ताहिक पत्र निकाला।
ने पंजाबी साहित्य की महान सेवा की है। प्राकृतिक
से इन्हें अत्यन्त प्रेम है। इनकी दो कन्याएँ हैं।

रचनाएँ—इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। अनेक विधाओं
होंने साहित्य रचा है, जो इस प्रकार है :—

कविता—(१) राणा सूरतसिंह, (२) लहरां दे हार, (३) मटक हुलारे, (४) बिजलियां दे हार, (५) कम्बदी कलाई, (६) प्रीत वीणा।

उपन्यास—(१) सुन्दरी, (२) बिजे सिंघ, (३) सतवन्त कौर, (४) बाबा नौधसिंघ।

नाटक—'राजा लख दाता सिंह'।

अन्य ग्रन्थ—(१) गुरु नानक चमत्कार, (२) कलगी-धर चमत्कार, (३) पुरातन जनम साखी, (४) श्री गुरु ग्रन्थ कोश, (५) सूरज प्रकाश, (६) संत गाथा आदि।

मूल्यांकन—भाई वीरसिंह जी ने गद्य तथा पद्य दोनों ही
में पंजाबी भाषा की महान सेवा की है। आप एक
यवादी कवि हैं। इनकी कविता में सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों
काफी प्रतिपादन हुआ है। इसमें ईश्वरीय प्रेम की अभि-
त विभिन्न प्रकार से की गयी है :—

ने सिक्ख जिन्हां ने आखो, उह कर आराम नहीं बहिंदे।
बाने बैंना दी मौदर, उह दिन रात पये बहिंदे॥

इन्होंने इस ईश्वरीय प्रेम को सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में लक्षित किया है। प्राकृतिक दृश्यों का भी इन्होंने सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। पर यहाँ भी उनका ईश्वरीय प्रेम ही प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। अपने देश की प्रत्येक वस्तु से आपको प्रेम है। पर्वत, नदी, झरने, पशु, पक्षी सभी के प्रति इनका प्रेम कविता में स्पष्ट झलकता है।

भाव की दृष्टि से इनको छोटी रचनाओं में सफलता मिली है। राणा सूरतसिंह इनका महाकाव्य माना जाता है। परन्तु इस काव्य में अनेक स्थानों पर वे नीरस हो जाते हैं। प्रिंसिपल तेजासिंह के कथनानुसार इन्हें पता नहीं लगता कि भाव ने कब इनका साथ छोड़ दिया है। 'मटक हुलारे', 'बिजलियाँ दे हार' आदि रचनाएँ भावात्मकता तथा रसात्मकता की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ी हैं।

कविता की अपेक्षा गद्य के क्षेत्र में इन्होंने अधिक कार्य किया है। यों तो आपसे पहले भी गद्य उपलब्ध होता है, परन्तु आधुनिक गद्य का प्रारम्भ इन्हीं से माना जाता है। नाटक, उपन्यास तथा जीवनियों के तो आप जन्मदाता ही माने जाते हैं। इनकी कविताओं में जो एकरसता दृष्टिगोचर होती है, वह गद्य में कम है। गद्य का विषय मुख्य रूप से सिक्ख मत ही है। गद्य में स्वाभाविकता तथा मनोहारता है। प्रो० प्रीतम-सिंह के कथनानुसार इन्होंने अनेक प्रकार की गद्य विधाओं में अभ्यास के द्वारा सफलता प्राप्त की है। गुरमत के सिद्धान्तों के चित्रण में, किसी भी विचार को स्पष्ट करने में, लोकपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में तथा अपने भाव की अभिव्यक्ति में भाई वीरसिंह को पर्याप्त सफलता मिली है। इनके गद्य में गुरुओं की शब्दावली भी पायी जाती है। इनके गद्य का एक उदाहरण

ा प्रकार है :—

'इस दिसदे वसदे जगत विच सारे जीव वखो वख तुरदे, ्रदे, खाँदे-पीदे, लड़दे-झगड़दे, आपा पालदे, दुए आपे तों वेवें करदे नज़र पैंदे हन।'

भाई वीरसिंह ने प्रायः छोटे छन्दों का प्रयोग किया है। ाचीन लम्बे छन्दों का आपने त्याग ही किया है। इनकी भाषा त्यन्त मीठी है। सरसता भी है, परन्तु कहीं-कहीं अनुभूति ी गहनता से कविता में दुरूहता तथा नीरसता भी उत्पन्न ी गयी है। इन्होंने पजाबी में आधे अक्षरों का भी प्रयोग किया , परन्तु आज विद्वानों को आधे अक्षरों का प्रयोग मान्य नहीं । भाई वीरसिंह का पंजाबी साहित्य में स्थान अविस्मरणीय । पजाबी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भ में इन्होंने ाचीन इतिवृत्तात्मक कविता को समाप्त करके नवीन कविता ी धारा को प्रवाहित किया। अनेक गद्य-विधाओं को जन्म दिया। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

प्रो० पूरनसिंह

इनका जीवन काल सन् १८८१ ई० से सन् १९३१ ई० तक ाना जाता है। इनका जन्म जिला रावलपिंडी के सतहड़ नामक ाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार करतारसिंह ा, जो पटवारी का कार्य करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने ाँव में ही प्राप्त की। इसके पश्चात् रावलपिंडी के मिशन ्कूल में दसवीं तक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा े लिए ये जापान की राजधानी टोकियो गये। वहाँ पर जापा-नियों के स्वदेश-प्रेम का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। बुद्ध-मत ा भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। जापान की सुन्दरता

ने इन्हें सौन्दर्य-प्रेमी बना दिया था। उन्ही दिनो स्वामी रामतीर्थ भ्रमण करते हुए जापान पहुँचे। उनके वेदान्त का आप पर इतना प्रभाव पड़ा कि ये बाल कटवा कर भगवे वस्त्र धारण करने लगे।

जापान से जब ये कलकत्ते वापिस आये तो पिता इनसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। परन्तु माता के प्रेम से विवश होकर ये संन्यासी नही बने। बाद में इन्होने विवाह भी करा लिया था। अनेक स्थानों पर इन्होंने नौकरी की, पर कहीं भी अधिक समय तक न टिक सके। सन् १६१२ ई० मे इनकी भेट भाई वीरसिंह जी से हुई। उनके प्रभाव में आकर इन्होंने फिर बाल रखवा लिये तथा सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार ही जीवन व्यतीत करने लगे। ये स्वभाव के अत्यन्त मस्त तथा सौन्दर्य-प्रेमी थे। कहा जाता है कि एक बार इन्होने जड़ांवाला के पास कुछ भूमि लेकर खेती की, परन्तु वह बाढ मे बह गयी। बहती हुई खेती को देखकर ये प्रसन्न हो-हो कर नाचने तथा गाने लगे :—

भला होया मेरा चरखा टुट्टा, मेरी जिन्द अजाबों छुटी।

रचनायें—इन्होने अनेक पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी हैं। कुछ भावात्मक निबन्ध हिन्दी मे भी लिखे हैं। पंजाबी में आपकी निम्नलिखित पुस्तकें मानी जाती हैं :—

कविता—खुल्हे मैदान, खुल्हे घुड।

उपन्यास—परकासना (अप्रकाशित), भागीरथ (अप्रकाशित), मोयाँ दी जात (अनुवादित)।

इसके अतिरिक्त "कलाधारी ते कलाधारी पूजा" इनकी एक सुन्दर अनुवादित रचना है।

मूल्यांकन—प्रो० पूरनसिंह की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उनकी प्रेम भावना है। उनके हृदय का उत्कट प्रेम

प्रकृति के प्रति प्रकट हुआ है। देश के नदी-नालों, पर्वत, झरनों, वृक्ष, लता, फूल, पशु-पक्षी आदि इन्हें बहुत प्रिय हैं। चुपचाप चरते हुए पशु, अपनी मस्ती में उड़ते हुए पक्षी, शान्त नीरव बहते झरने सभी इनके प्रिय पात्र हैं। अपनी देश की प्रत्येक वस्तु इन्हें प्रिय है। इस प्रेम-भावना में प्रकृति की सुन्दरता का काफ़ी बड़ा योगदान है। प्रकृति का प्रत्येक उपादान इन्हें सुन्दरता से भरा हुआ तथा प्रेम का आह्वान करता हुआ प्रतीत होता है। इन्हें वर्तमान समय से प्राचीन समय अधिक अच्छा लगता है, जब पंजाब में हीर-राँझा, सोहणी-महीवाल जैसे प्रेम के अवतार हुए थे। वे वर्तमान समय से घबराकर या तो प्रकृति के अचल में मुँह छिपाना चाहते है या फिर उसी पुराने समय को पुकारते हैं :—

> सोहणियाँ ! दस ना, उह वेले किधर लघ गये।
> उह पिप्पलाँ दे पतिया दी झूम-झूम,
> जेहड़े साडे गूँगे दिलाँ नूँ विलूँधरदी सी,
> उह खड़कदे किउँ निमाझूण हो अज।

इनकी कविता मे प्रेम की तीव्रता होते हुए भी वासना का अभाव है। अपनी मस्ती मे ये प्रेम के अत्यन्त स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं, परन्तु हृदय की स्वच्छता के कारण इन्हें कहीं भी झिझक उत्पन्न नहीं होती। प्रेम के सयोग के चित्र भी आप निस्संकोच प्रस्तुत करते हैं। निजी अनुभवों को आपने स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त किया है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

> उह जनानी, नैनाँ राही पाँदी मेरे रूह विच,
> उह चीज़ जिस लई मैं सदियाँ रुलया।

इनकी कविता में स्वदेश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है।

देश की कृषक आदि गरीब जनता के दु:खों को इन्होंने कविता में मुख्यत: स्थान दिया है। इनकी कविता का परवर्ती कवियों पर गहरा प्रभाव है। दीवानसिंह काले पाणी, प्रो० मोहनसिंह, नरिन्दरपालसिंह आदि के नाम उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं।

इनकी कविता में भावों का जितना प्रवाह है, भाषा उसे सम्भालने में असमर्थ रही है। यही कारण है कि प्रायः इनकी कविता में स्पष्टता नहीं होती। कवि स्वयं भूल जाता है कि मैं क्या कह गया। कवि को अपनी इस कमी का भी अनुभव है तथा वह लिखता है —

> अक्खरां दे अक्खर मेरे,
> निक्के-निक्के हत्थां विच डिग-डिग पैंदे।

कविता की ही भांति गद्य में भी इनके भावों का उन्मुक्त प्रवाह विद्यमान है। इनके सभी लेख भावात्मक हैं। भावों में बहने के कारण लेखों में स्पष्टता का अभाव है। विषय का विवेचन करने के स्थान पर ये भावों में ही डूबते-उतराते हैं। फलस्वरूप तार्किकता स्पष्टता, सुबोधता, सुनियोजितता आदि का इनमें अभाव है। एक प्रकार से गद्य तथा पद्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ये विवेचनीय विषय को तर्क तथा युक्ति से न समझाकर अलंकारों से सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। इनके समस्त लेख इनकी रोमानी प्रवृत्ति से पूर्ण हैं।

गद्य की शैली भावात्मक है। एक तीव्र प्रवाह इसमें विद्यमान है। इनकी शैली पूर्व के सभी लेखकों से भिन्न है। परन्तु परवर्ती काल के लेखक भी इसे अपना नहीं सके हैं। निबन्धों के लिये इस शैली को बहुत अच्छा तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु कलात्मकता की दृष्टि से इसका अपना ही महत्त्व है।

एक उदाहरण इस प्रकार है :—

'हमेशा एक से पता नहीं लगता, पर जब पत्थरा काम होवे तो पानी भी दिन बार-बार देता है, हमेशा गुजरता है।'

कविता तथा निबन्ध दोनों में ही इनकी भाषा पर्याप्त सरल तथा मीठी है। कविता में तो इन्होंने नवीन प्रयोग किये हैं तथा ये सफल भी रहे हैं। भावों की तीव्रता के कारण एक अद्भुत प्रवाह पाया जाता है, जिससे एक निराली ही लय पैदा हो जाती है। भाषा केन्द्रीय तथा ठेठ पंजाबी है। छन्द के क्षेत्र में ये मुक्तक छन्द का प्रयोग करने के अभ्यासी हैं। लय के आधार पर ही पंक्तियों की लम्बाई निर्धारित की गयी है। कविताएँ अतुकान्त हैं। इस प्रकार भाषा, भाव, शैली, छन्द सभी क्षेत्रों में पूरनसिंह जी ने नये ही प्रयोग किये हैं, तथा वे अपने प्रयोगों में सफल भी रहे हैं। कविता को प्राचीनता से मुक्त करके नवीन रूप प्रदान करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

धनीराम चातृक

इनका जन्म सन् १८७६ ई० में हुआ था। छोटी आयु में ही ये अमृतसर में आकर रहने लगे थे। बचपन से ही साहित्य के प्रति इनकी अभिरुचि रही है। मिलनसारी तथा अत्यन्त हँसमुख स्वभाव इनका सहज गुण है।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में इन्होंने पहले भर्तृहरि तथा नल-दमयन्ती पर काव्य लिखे। पर ये कोई विशेष स्थान नहीं पा सके। इनकी चार पुस्तकें साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर रचनाएँ मानी जाती हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं :—
(१) चन्दन-वाड़ी, (२) केसर-कियारी, (३) नवाँ जहान,

(४) सूफी-खाना।

मूल्यांकन—इनकी कविता में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं। प्रथम तो इन्होंने राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों को अत्यन्त आलंकारिक तथा सजी हुई भाषा में प्रस्तुत किया है। द्वितीय, इनकी कविता में प्रेम का उन्मुक्त प्रवाह पाया जाता है। प्रेम की तीव्रता, विरह की असह्यता तथा पीड़ा का अत्यन्त मनोहारी वर्णन इनकी कविता में उपलब्ध होता है। 'राधा सन्देश' में से इनकी कविता का एक उदाहरण देखिये :—

> ऊधो काहन दी गल सुणा सानूं,
> काहनूं चिणग दुम्रातियाँ लाइयाँ नीं।
> मसाँ-मसाँ सन आठरन धाउ लग्गे,
> नवियाँ नशतराँ आण चलाइयाँ नीं।
> असी कालजा घुट के बहि गये साँ,
> मुड़के सुत्तियाँ कलाँ जगाइयाँ नीं।
> तेरे गियान दी पुडी नहीं काट करदी,
> इन्हाँ पीड़ाँ दियाँ होर दवाइयाँ नीं।

इनकी कविता में सामान्य जीवन की स्वाभाविकता भरी हुई है। कुछ पंजाबी के विद्वानों के मत से इन्होंने आकाश में उड़ी पंजाबी कविता को धरती पर वापिस उतारा। बात है भी ठीक। कवि ने जो भी ग्रहण किया है, वह सामान्य जीवन से ही, नित्यप्रति के जीवन से ही किया है। इनकी कविता में प्राप्त इनकी प्रेम भावना, सभी धर्मों के प्रति समान भाव, पराधीनता की निद्रा से जागने का आह्वान, पवित्र जीवन बिताने की प्रेरणा, सभी किसी काल्पनिक लोक की वस्तु न होकर नित्य जीवन की स्वाभाविकता से युक्त हैं।

कविता में अनुभूति की स्वाभाविकता, तीव्रता तथा निजी-पन के कारण गीति-तत्त्व का भी पर्याप्त समावेश हुआ है। 'ए दिल होश करीं' आदि कविताएँ सुन्दर गीति काव्य के उदाहरण कहे जा सकते है। कवि को जीवन में काफी ऊँचे-नीचे समय देखने पड़े हैं। जीवन का अत्यन्त गहरा तथा निजी अनुभव कवि की कविता में स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है।

कवि की सबसे बड़ी विशेषता भाषा पर असाधारण अधिकार है। अत्यन्त मुहावरेदार तथा मीठी भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा साहित्यिक होते हुए भी अत्यन्त सरल है। भाई वीरसिंह जैसी दुरूहता इसमें नहीं मिलती। कवि को अभिव्यक्ति के लिये प्रयास नहीं करना पड़ता। वह जो कुछ भी कहना चाहता है, उसे अत्यन्त सरल तथा स्वाभाविक ढंग से कहता चला जाता है। शैली में एक प्रवाह है। काव्य में एक लय है, जो कहीं भी टूटने नहीं पाती। कलापक्ष की समृद्धता जितनी इनके काव्य में उपलब्ध होती है, उतनी अभी तक किसी अन्य पंजाबी कवि के काव्य में उपलब्ध नहीं होती। सामान्य जीवन की वस्तुओं से ही अप्रस्तुत विधान ग्रहण किया गया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग इनके काव्य में उपलब्ध होता है।

लाला किरपासागर

लाला किरपासागर का जीवन काल सन् १८७५ ई० से सन् १९३९ ई० तक माना जाता है। इनका जन्म जिला गुजरांवाला के पिपनाखा नामक ग्राम में हुआ था। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। जीवन में इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा जीविका के लिए कठिन परिश्रम भी।

पंजाब विश्वविद्यालय में आपने काफी समय तक कार्य किया है।

इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं--(१) लकदामी देवी, (२) महाराजा रणजीतसिंह तथा (३) मन-तरंग।

मूल्यांकन--'लकदामी देवी' इनका महाकाव्य है। यह महाकाव्य वाल्टर स्कॉट के प्रसिद्ध काव्य 'लेडी ऑफ दी लेक' का छायानुवाद है। काव्य को बिलकुल पंजाब के जीवन से मिला दिया गया है। कवि का मौलिकता के प्रति आग्रह भी इस काव्य में सर्वत्र व्यक्त हुआ है। काव्य में शृंगार, हास्य, करुणा तथा वीर रसों की यथास्थान सुन्दर अभिव्यंजना है। कवि का देश-प्रेम इस काव्य में सर्वत्र अभिव्यंजित हुआ है। पंजाब के नदी-नाले, पर्वत-झरने, बाग, सामाजिक रीति-रिवाज आदि का सुन्दर चित्र इस काव्य में प्रस्तुत किया गया है। कवि को पंजाबवासियों में अपने देश के लिये प्रेम उत्पन्न करने में पर्याप्त सफलता मिली है।

कवि ने पात्रों का चित्रण भी अच्छा किया है। पात्र अपने चरित्र की विशेषताओं को भली प्रकार व्यंजित कर पाते हैं। महाराज रणजीतसिंह, जैमलसिंह, लकदामी देवी आदि पात्रों के नाम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कवि को वर्णनों में अधिक सफलता मिली है। वैसे भी यह वर्णनात्मक महाकाव्य है।

कवि की भाषा सरल तथा मीठी है। साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हुए भी कवि उसे कठिन नहीं होने देता। प्रमुख रूप से दवैया छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त बैत, सवैया, कवित्त तथा निरवंधी छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

'महाराजा रणजीतसिंह' एक नाटक है। 'मन-तरंग' में

छ कविताएँ संग्रहीत है। इन कविताओं में भी 'जेहलम का
नी' तथा 'देश पंजाब' अधिक प्रसिद्ध हैं। भाव की दृष्टि से
कविताएँ भी सुन्दर बन पड़ी हैं। एक उदाहरण इस प्रकार
:—

झर्नां दा गड़-गड़ादा रेढ़, तन मन नूँ हरा करदा।
तरावट दे के जीवन नूँ दिलाँ विच हौसला भरदा॥

डॉ० दीवानसिंह

डॉ० दीवानसिंह जिला सियालकोट के गाँव गुरु की गलो-
याँ में पैदा हुए थे। आजीविका के कारण ये अंडेमान द्वीप
भी काफी समय तक रहे थे। अन्त में जापानियों के हाथों
नकी मृत्यु हो गयी थी।

इनकी एक मात्र रचना 'वगदे पाणी' ही उपलब्ध होती
। काव्य में व्यंग्यात्मकता तथा हास्य की पुट है। प्राचीन
ह्याडम्बरों तथा कुरीतियों का कवि खण्डन करता है।
वन में उत्साह तथा आगे बढ़ने का भाव इनकी कविता में
र्वत्र विद्यमान है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

पाणी वगदे ही रहिण, कि वगदे ही सोंहदे ने।
सड़ोंदे बुसदे ने, कि पाणी वगदे ही रहिण॥

कवि नवयुवकों को भाग्य से टक्कर लेने के लिये उत्तेजित
रता है। कवि प्रगतिशील है। कविताओं में भावात्मकता
र्की है। कवि की शैली अपनी ही है। प्रो० पूरनसिंह से
नका लिखने का ढंग काफी मिलता है। प्रायः मुक्तक छन्द
ा ही अपनाया गया है। भावात्मकता के कारण कविता में एक
वाह है। भाषा सरल तथा मीठी है। दुरूहता का अभाव है।
वि का देश-प्रेम भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है।

डॉ० मोहनसिंह

डॉ० मोहनसिंह का जन्म जिला रावलपिंडी के देवी गाँव में हुआ था। जन्म का समय सन् १८६६ ई० माना जाता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव इन्होंने प्राप्त किये हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। साहित्य की अनेक विधाओं में इन्होंने काव्य रचना की है। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

कविता—(१) धुप-छाँ, (२) नील-धारा, (३) पत-झड़, (४) जगत-तमाशा, (५) निरकारी साखियाँ, (६) मसती, (७) सोमरस।

कहानियाँ—(१) देविन्दर बतीसी, (२) रंग-तमाशे।

एकांकी—पंखड़ियाँ।

साहित्यिक अनुसन्धान—(१) सूफियाँ दा कलाम, (२) काफियाँ बुल्लेशाह, (३) शाह हुसैन, (४) आधुनिक पंजाबी कविता, (५) पंजाबी साहित्य दा इतिहास, (६) जातिन्दर साहित सरोवर।

मूल्यांकन—डॉ० मोहनसिंह की कविता में अनेक आध्यात्मिक वादों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गुरु मत, सूफी मत, वेदान्त तथा योग दर्शन का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इनकी कविता में बौद्धिकता कुछ अधिक होती है। जनसाधारण को दृष्टि में रखकर साहित्य सृजन करने की परम्परा पंजाबी साहित्यकारों को मान्य रही है। परन्तु मोहनसिंह जी इसके अपवाद कहे जा सकते हैं। इन्हें कला-कला के लिये मानने वाले साहित्यकारों की कोटि में रखा जा सकता है।

कवि किसी भी विषय पर अपने निजी दृष्टिकोण से

को छूता है । कवि की अनुभूति निजी होते हुए भी
ी सामान्यकृत है कि पंजाब के प्रत्येक भाग में इनकी
ताएँ फैल चुकी हैं, तथा पाठक उन्हें अत्यन्त चाव से पढ़ते
साम्यवादी विचारों से प्रभावित होने के पश्चात् कवि
प्रेम को सर्व-साधारण में फैला देता है । वह अपनी निजी
श्यकताओं से भी जनसामान्य की आवश्यकताओं को
क महत्त्व देता है । कवि लिखता है :—

बेशक पियार है उच्ची वसतू,
पर जीउणा होर उचेरा ।

परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कवि की
भा का पूर्ण विकास हो चुका है । अभी भी वह सत्य की
ज ही कर रहा है । सत्य से असत्य को पृथक् करने की शक्ति
अभी नहीं मिली है ।

कवि ने अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग किया है । भावों
प्रवाह से एक नवीन प्रकार की लय इनके काव्य में उपलब्ध
ती है । भाषा पूर्ण रूप से निर्दोष है । कुछ कविताओं में छः
वितयों के बैंत छन्द का प्रयोग किया गया है । बाद की कवि-
ओं में मुक्तक छन्द का भी व्यवहार हुआ है । छन्द में शब्दों
गूँज से ही भाव स्पष्ट होता जाता है । उपमा, दृष्टान्त,
पक आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है । काव्य
सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह भाव, भाषा, शैली सभी
ष्टियों से जन-सामान्य के लिये सरल तथा सुबोध बन गया
। यही कारण है कि पंजाब की जनता में वारिसशाह की
ीर के पश्चात् दूसरे स्थान पर यह काव्य प्रसिद्ध तथा प्रिय
ो सका है । भावों की तीव्रता, स्पष्टता तथा प्रवाह की दृष्टि
'अम्बी दा बूटा' नामक कविता का एक उदाहरण इस प्रकार

है :--

इक बूटा अम्बी दा,
घर साडे लगा नी।
जिस थल्ले बहिणा नी,
सुरगां विच रहिणा नी॥
को उसदा कहिणा नी,
विहड़े दा गहिणा नी।
पर माही बाझों नी,
प्रदेशी बाझों नी॥
इह मैनूं वढदा ए,
ते खट्टा लगदा ए॥

प्रीतमसिंह सफ़ीर

प्रीतमसिंह सफीर का जन्म सन् १९१६ ई० में माना जाता है। इनकी चार रचनाएँ उपलब्ध होती है--(१) कत्तक कूंजां, (२) रक्त बूंदां, (३) पाप दे सोहले, (४) राग रिशमां।

प्रीतमसिंह सफीर आत्मवादी कवि है। उनकी कविता में आत्मिक उन्नति के अतिरिक्त क्रान्ति तथा प्रेम भावना का प्रतिपादन भी किया गया है। कवि का अपना चिन्तन है। वह चिन्तन भी कविता में यथा-स्थान अभिव्यक्त होता गया है। परिणामस्वरूप कविता काफी गम्भीर तथा चिन्तन-युक्त हो गयी है। इनकी कविता जन-सामान्य की वस्तु न रह कर विशिष्ट साहित्य पारखियों तथा विज्ञ जनों की सम्पत्ति बन गयी है। अनेक विद्वान् कवि के विचारों से भी सहमत नहीं होते। परिणामस्वरूप कुछ आपको एक अच्छा कवि मानते हैं

कुछ अत्यन्त सामान्य कोटि का।

कवि कविता में कहीं-कहीं ऐतिहासिक तथा पौराणिक ...न भी उद्धृत करता जाता है। फिर भी इनकी कविता किसी ...प तथा निश्चित छन्द में आबद्ध नहीं है। कवि के अपने ...ी चिन्तन के भार से आक्रान्त होने के कारण कविता दुरूह ...निश्चय ही हो गयी है, परन्तु उसमें काव्य का अंश नहीं ...यह कहना कवि के साथ न्याय नहीं होगा। पंजाबी के जन- ...मान्य का जब मानसिक स्तर ऊँचा होगा तो निश्चय ही ...की कविता की सराहना होगी।

...वि ईश्वर की समस्त सृष्टि में प्रेम को ही सबसे महान ...तु मानता है :—

रब देख लिया, रचना देखी,
रचना नूं रब करके मन्निया,
पर रिश्ता जिहा साथी कोई नहीं,
मीरा इको गल आहँदो हाँ,
जाये ना प्रीत सुमार कदे।

परन्तु आदर्श प्रेम का वह इस संसार में अभाव पाता है। ...स के नाम पर स्वार्थपूर्ण प्रेम को पाकर कवि उत्तेजित हो ...टता है तथा झूठे प्यार पर करारी चोट करता है। कवि प्रेम ...पश्चात् जनता में जागृति उत्पन्न करना चाहता है। कवि में ...-प्रेम की तीव्र भावना है। 'दो पोतन दे पत्ते' नामक कविता ...कवि देश को विभाजन से बचाने के लिये आह्वान करता ...। 'हलवा कौन्तों', 'हिन्दुस्तान', 'किसे दे मूत गौ', 'हमसता- ...ह दा जमाना नहीं हुन्दा' आदि कवि की इसी प्रकार की रच- ...न्ए हैं।

कवि निर्धन जनता की पीड़ा को भी अनुभव करता है।

वह इसके लिये एक परिवर्तन लाना चाहता है, पर यह परिवर्तन आत्म-परिवर्तन पर आधारित है:—

हां, आतमां नूं जगाई रखणा बहुत जरूरी है।
पर उस दी सतिया तों क्रांति नूं मचाणा वध जरूरी है॥

कवि के मत से सभी जीवों में एक ही आत्मा है। इस तथ्य को न समझने के कारण ही आपस में लड़ाई-झगड़े होते हैं। 'कुत्ता ते फकीर' नामक कविता में कवि इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

कवि ने किसी एक छन्द का प्रयोग नहीं किया है। प्राय: मुक्तक छन्द का प्रयोग किया है। विचारों की गम्भीरता के कारण कविता में लय का भी अभाव है। जो प्रवाह प्रो० मोहनसिंह आदि की कविता में मिलता है, उसका इनकी कविता में अभाव पाया जाता है। शब्दावली पर गुरुवाणी की शब्दावली का प्रभाव है।

बावा बलवन्त

बावा बलवन्त का जन्म सन् १९१५ ई० में अमृतसर जिले के नेशटा ग्राम में हुआ था। बचपन मे पिता का स्वर्गवास हो जाने से इनके जीवन में प्यार की लालसा भर गयी। इन्हें पर्याप्त विद्या भी प्राप्त नहीं हो सकी। अमृतसर में ही मेहनत-मज़दूरी करके अपना जीवन-यापन करते थे तथा बाकी समय में साहित्य का अध्ययन करते थे। इनकी चार रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—(१) महा नाच, (२) अमर गीत, (३) ज्वालामुखी, (४) बन्दरगाह।

मूल्यांकन—बावा बलवन्त की कविता की मुख्य विशेषता उनकी प्रेम-भावना है। कवि की दृष्टि में प्रेम ही

ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य मात्र में एकता स्थापित कर सकता है, जो मानव के जीवन मे उत्साह भर सकता है तथा मनुष्य को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा सकता है। कवि इसीलिये स्वयं प्रेम में असफल होता हुआ भी प्रेम करने को कहता है :—

हे मुहब्बत तेरी छूह ही कदी,
आदमी होवेगा पूरन आदमी।
इस लई नफरत नूं जरादा ही रिहा,
मैं मुहब्बत उस नूं करदा ही रिहा।

प्रेम के अतिरिक्त बाबा जी की कविता का मुख्य प्रतिपाद्य उन सभी पुरानी मान्यताओं का खण्डन है, जो मानव की उन्नति में बाधा डालती है। कवि प्रगतिवादी दृष्टिकोण को भी कविता में उपस्थित करता है। परन्तु इतना होते हुए भी कविता कहीं भी इनके बौद्धिक विचारों से आक्रान्त नहीं हुई है। कवि स्वयं भी इस पक्ष में है कि कविता में जीवन तभी रहता है, जब वह हृदय की वस्तु बनी रहे :—

साहित नहीं जो जीवे, दिल नूं दिमाग करके।
साहित नही जो खोल्हे, मुंह नूं बेराग करके॥

कविता की भाषा अत्यन्त सरल तथा सरस है। उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों को भी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनाया गया है। शब्दों का चुनाव भावों के अनुकूल है। अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है। कविता में गेयता विद्यमान है। अलंकारों के प्रति कवि का मोह नहीं रहा है। स्वाभाविक रूप से अलंकारों का काव्य में प्रयोग हुआ है। बाबा बलवन्त की प्रतिभा बहुमुखी है। आजकल इनका झुकाव प्रगतिवाद की ओर अधिक है।

अमृता प्रीतम

पंजाबी की महिला कवियों में इनका नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इनका जन्म सन् १९१९ ई० में लाहौर में ज्ञानी करतारसिंह हितकारी के घर में हुआ था। इनके पिता एक अच्छे कवि तथा विद्वान थे। कविता की ओर रुचि इन्हें अपने पिता से ही प्राप्त हुई। कहा जाता है कि १६ वर्ष की आयु में इन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं :—

कविता संग्रह—(१) अमृत लहिरां, (२) भेल धोते फुल, (३) बदलां दे पल्ले ओहले, (४) गीतांवालियां, (५) संझ दी लाली, (६) पत्थर-गीटे, (७) लम्मियां-वाटां, (८) सरघी-वेला, (९) लोक-पीड़, (१०) मैं तवारीख हां हिन्द दी।

उपन्यास—(१) कुंजियां, (२) छब्बी वर्हे बाद।

लोकगीतों का संग्रह—पंजाब दी आवाज।

मूल्यांकन—अमृता प्रीतम की प्रारम्भिक रचनाएँ उपदेशपूर्ण तथा सुधारवादी हैं। इसका कारण इन पर अपने पिता का प्रभाव कहा जा सकता है। 'अमृत लहिरां' आदि में इस प्रकार की कविताएं संग्रहीत हैं। कवयित्री ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि उस समय किसी भी वस्तु को वह उसी दृष्टि से देखती थी, जिस दृष्टि से वह समाज में देखी जाती थी। परन्तु अब इनकी मान्यता काफी बदल चुकी है। कविता का विषय भी अब विषयपरक न रहकर आत्मपरक बन गया है। कवयित्री का दृष्टिकोण वस्तुपरक न रह कर अन्तर्मुखी हो गया है।

इन्हें सबसे अधिक प्रसिद्धि 'पत्थर गीटे' तथा 'लम्मियां

टाँ' से प्राप्त हुई है। इन रचनाओं में कवयित्री के हृदय की
कोमल भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। पंजाबी साहित्य में जितनी
कोमल तथा रागात्मक कविता इनकी है, उतनी अन्य किसी
की नही कही जा सकती। कोमल भावनाओं के साथ
भाषा की कोमलता भी प्रशंसनीय बन पड़ी है। एक उदाहरण
इस प्रकार है :—

> निम्मो निम्मो तारियाँ दी लो,
> चन्न पवे ना जाग वदलिये,
> पोलो जिही खलो।
> पलक ना झमको अखियों,
> किते खड़क ना जाए हा!

रागात्मकता की दृष्टि से 'पाथर-गीटे' कवयित्री की सबसे
सुन्दर रचना कही जा सकती है। 'लम्मियाँ वाटाँ' में
कवयित्री के मन का अवसाद व्यक्त हुआ है। सन् १९४७ ई० में
भारत का बँटवारा तथा उसके बाद झूठी धार्मिकता के नाम
पर हिन्दू तथा मुसलमानों के पाशविक कृत्यों से कवयित्री को
बहुत दुःख हुआ। यही दुःख इसमें व्यक्त हुआ है। आपस के
वैमनस्य तथा प्रेम के अभाव को देख कर कवयित्री वारिसशाह
का आह्वान करती है :—

> अज्ज आखाँ वारसशाह नूँ, तू कतबाँ विचों बोल।
> अज्ज किताबे इश्क दा कोई अगला वरका खोल।
> इक रोई सी धी पजाब दी तूँ लिख लिख मारे वैण।
> अज लखाँ धीआँ रोदियाँ, तैनूँ वारसशाह नूँ कहिण।

इनकी कविता में देश की गरीबी तथा स्वतन्त्रता की चाह
का सच्चा चित्रण उपलब्ध होता है। आज कल इनकी रुचि
पंजाबी लोकगीतों के लेखन की ओर है।

इनकी भाषा अत्यन्त मीठी तथा सरल है। भावों के
भुक्त शब्दों का चुनाव किया गया है। भाषा ठेठ है। कविता
एक प्रवाह है। भाषा की मिठास तथा सरलता के कारण
आज पजाब के घर-घर में इनकी कविता बड़े प्रेम से पढ़ी
ती है। काव्य में गीति-तत्व अधिक पाया जाता है। प्रायः
तिक छन्द का प्रयोग किया गया है, जो गेयता पर आधारित
। कवयित्री ने सामान्य जीवन की जानी-पहचानी वस्तुओं
ही अप्रस्तुत विधान ग्रहण किया है। अलकारों का प्रयोग
ा ही हुआ है।

हीरासिंह दरद

हीरासिंह दरद प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित एक
साही कवि है। जीवन के पहले पक्ष में कवि कांग्रेसी
चारों से प्रभावित होता है, तथा अनेक बार जेल यात्रा भी
ता है। परन्तु बाद में वह साम्यवादी विचारों को अपना
ा है, तथा वर्तमान स्वतन्त्रता को मृगतृष्णा मात्र बताता
। कवि ने पंजाबी भाषा की अनथक सेवा की है। 'फुलवाड़ी'
द्वारा इन्होंने अनेक कवियों का तथा अन्य साहित्यकारों को
खने की प्रेरणा दी है। इनके दो कविता संग्रह प्राप्त होते
:—(१) दरद सुनेहे तथा (२) होर अगेरे। 'होर अगेरे'
भूमिका में कवि साहित्य सम्बन्धी अपने विचारों का
ादन करता है। उसके मत से समाज तथा इतिहास से
रपेक्ष साहित्य झूठा साहित्य है।

'अकाली लहर' के समय मे कवि ने अत्यन्त उत्साह
क इसमें भाग लिया। कवि को समय की भी काफी परख
। 'दरद सुनेहे' में उसकी 'अकाली लहर' से प्रभावित

विताएँ संग्रहीत हैं। कवि समाज में एक परिवर्तन लाना
हता है। संसार का आचरण तथा रीति-रिवाज उसे पसंद
ही आते :—

टुट गये सबर पियाले मेरे,
डुल गये मिठक भरोसे।
दोशी डिट्ठे हुकम चलाउंदे,
फांसी चड़दे बिदोशी।

कवि की कविता का विषय मूलतः जन-सामान्य से
सम्बन्धित होने के कारण भाषा भी जन-सामान्य की ही ली
गयी है। भाषा सरल तथा स्पष्ट है। अनेक कविताओं की शैली
वर्णनात्मक भी है। कविता में एक सन्देश छिपा होता है।
बैत छन्द का प्रयोग किया गया है, जो लय पर आधारित
। कविता में एक प्रवाह तथा प्रेरणा विद्यमान रहती है।

गुरमुखसिंह मुसाफिर

गुरमुखसिंह मुसाफिर जिला कैंबलपुर के अधवाल गाँव के
रहने वाले हैं। 'अकाली लहर' ने ही इन्हें कवि बनाया है।
वह स्कूल में एक अध्यापक थे परन्तु अकाली आन्दोलन में
सम्मिलित होने के कारण इनको नौकरी से पृथक् कर दिया
गया। बाद में अकाली पत्र का सम्पादन करने के कारण इन्हें
कई बार जेल यात्रा भी करना पड़ी थी। इनकी चार रचनाएँ
प्रसिद्ध हैं—(१) जीवन-पंध (२) सबर दे बाण, (३)
प्रेम-बाण, (४) मुसाफिरियाँ।

मूल्यांकन—कवि का मुख्य प्रतिपाद्य राजनीतिक तथा
सामाजिक हलचल रही है। देश की स्वतन्त्रता के लिये जनता
को आहुति का सन्देश कवि ने दिया है। कवि में सम्यक् और

उत्साह है। कवि के हृदय का उत्साह कविता में एक प्रवाह उत्पन्न कर देता है। कवि ने अनेक प्रकार के भावों को अभिव्यंजित किया है। बचपन नामक कविता में कवि अपने बचपन की मीठी यादों को उपस्थित करता है :—

> कहिंदा कोई शैतान सी,
> कोई आखदा हैवान सी,
> मासी ने कहिणा 'मुखया'
> मारूँगी मरने जोगिया,
> कंडा तूं जिद्दी हो गिया।

कवि ने हास्य रस की भी सफल अभिव्यंजना की है। पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालने वाली इनकी कविता 'जींदी रहे मेरे बचयाँ दी माँ' हास्यरस से भरपूर है :—

> सतलुज, बियास, रावी, झनाँ।
> जिहलम जद तक वगे सुहाँ।
> हेठ जिमो उत्ते आसमाँ।
> जींदी रहे मेरे बचयाँ दी माँ।

कवि ने सरल भाषा को अपनाया है। भाषा मे भावों को अभिव्यजित करने की पूर्ण शक्ति है। कविता में प्रवाह है।

हरिन्दरसिंह रूप

हरिन्दरसिंह रूप महाराजा रणजीतसिंह के दरबारी ग्रंथी गियानी सन्तसिंह के पुत्र थे। इन्होंने लाला धनीराम चातृक को अपना गुरु बनाकर अपना साहित्यिक जीवन कवि के रूप में प्रारम्भ किया था। इनके चार कविता संग्रह प्रसिद्ध हैं— (१) डूंघे वहिण, (२) रूपरेखा, (३) लोक वारां, (४) मनुख दी वार। कवि को सबसे अधिक ख्याति अपने वार

(१) स्वांत बूंद, (२) सावण पींघां, (३) विश्व वेदना, ४) कनमोयां, (५) मरद अगमड़ा।

इन्होंने 'खियाम खुमारी' नाम से उमर खैयाम की रुबाइयों ा अनुवाद किया है। यह अनुवाद खासा बन पड़ा है। 'मरद ागमड़ा' इनका गुरु गोविंदसिंह जी पर लिखा हुआ महाकाव्य । कवि की यह रचना सुन्दर बन पडी है। कवि को विशेष ्प से वर्णनों में सफलता मिली है। कलात्मकता भी इसमें र्याप्त पायी जाती है। इस काव्य के कारण कवि को काफी ्याति प्राप्त हुई है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

सतलुज ठाठाँ दे रिहा, वगदा निरमल नीर।
जिस दी इक-इक बूंद विच, अमृत दी तासीर।
नाल पहाड़ाँ ठहिकदा, नाल मचाँदा शोर।
लहिराँ दे नाल लगदा, दौड रिहा मुंह जोर।

कवि को लोक-जीवन की काफी परख है। उसके निजी जीवन का अनुभव भी काव्य में जहाँ-तहाँ अभिव्यक्त हुआ है। जीवन के विविध पक्षों का चित्रण कवि ने किया है। कविता में स्वाभाविकता तथा सरलता होती है। विपय का चुनाव भी कवि बड़ी सुन्दरता से करता है। भापा सरल तथा सरस है। कविता

वस, आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज आदि अनेक धार्मिक सभाओं
ा मतों के द्वारा धर्म-प्रचार के लिए गद्य-साहित्य में अपने
द्धान्तों को प्रस्तुत करना, अंग्रेज़ी, बंगला तथा हिन्दी के
य-साहित्य का प्रभाव, वैज्ञानिक उन्नति तथा समय की माँग
दि के प्रभाव के फलस्वरूप पंजाबी के गद्य-साहित्य में उप-
ास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, जीवनियाँ, यात्रा-
ान्त, साहित्यिक-समालोचना तथा अनुसन्धान के रूप में
क विधाओं का जन्म तथा विकास हुआ है। यहाँ इन सभी
ाओं पर क्रमशः पृथक्-पृथक् विचार करना ही अधिक
ुक्त होगा :—

उपन्यास

पंजाबी साहित्य में उपन्यास का प्रारम्भ भाई वीरसिंह
पन्यासों से होता है। इन्होंने सन् १८६७ ई० में सर्वप्रथम
री' नामक उपन्यास लिखा। इसके पश्चात् इनके तीन
यास और मिलते हैं—(१) विजै सिंघ, (२) सतवंत
तथा (३) बाबा नौधसिंह। उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य

की पवित्रता तथा सदाचार के ऊपर उपन्यासकार ने विशेष बल दिया है। ये उपन्यास भी कला की दृष्टि से भाई वीरसिंह के उपन्यासों के समान ही हैं।

चरनसिंह शहीद के पाँच उपन्यास प्रसिद्ध हैं :—(१) दलेर कौर, (२) रणजीत कौर, (३) चचल मूरती, (४) शराब कौर तथा (५) दो बहुटियाँ। शहीद जी ने कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। विषय इनके उपन्यासों का भी सामाजिक तथा धार्मिक ही है, परन्तु आदर्शवाद के साथ यथार्थवाद को भी इनमें स्थान मिल पाया है।

उपन्यास साहित्य मे कला की दृष्टि से नानकसिंह के उपन्यास सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं। आधुनिक उपन्यास के सभी गुण इनके उपन्यासो में उपलब्ध होते हैं। नानकसिंह ने तीन दर्जन के लगभग उपन्यास लिखे हैं। इनके विशेष प्रसिद्ध उपन्यास ये हैं :—(१) गरीब दी दुनियाँ, (२) पियार दी दुनियाँ, (३) लव मैरिज, (४) अधखिड़िया फूल, (५) मँझधार, (६) चिट्टा लहू, (७) जीवन-सग्राम, (८) गगा जली विच शराब, (९) कागताँ दी बेड़ी, (१०) आदमखोर। नानकसिंह ने मुख्य रूप से सामाजिक विषय ही अपनाये है। कथा के विकास तथा चरित्र के स्वाभाविक चित्रण में नानकसिंह अपने पूर्ववर्त्ती सभी उपन्यासकारों से सफल रहे हैं। श्रेष्ठ तथा निम्न सभी प्रकार के पात्र इनके उपन्यासों मे प्राप्य है। अपने अन्तिम उपन्यासों में नानकसिंह यथार्थवादी होता जा रहा है।

नानकसिंह के पश्चात् सुरिन्दरसिंह नरूला का नाम लिया जा सकता है। सुरिन्दरसिंह नरूला के उपन्यासों से ही पंजाबी-साहित्य के उपन्यासों में यथार्थवादी प्रभाव बढ़ जाता है। इनके

छः उपन्यास प्रसिद्ध हैं :—(१) पिउ-पुत्तर, (२) रङ्गमहल, (३) दीन-दुनिया, (४) जगराता, (५) लोक दुशमन, (६) नीली बार। पात्रों के चित्रण में नरूला विशेष सफल रहा है। वार्तालापों में नाटकीयता तथा स्वाभाविकता होती है। कहानी में मनोरंजकता कम होती है।

इनके साथ ही जसवन्तसिंह कँवल ने भी चार उपन्यास लिखे हैं। 'सच नूँ फाँसी', 'पाली' तथा 'पूरनमासी' के आधार पर ही इन्हें खासी ख्याति प्राप्त हो गयी है। इनका चौथा उपन्यास 'रात बाकी है' भी सुन्दर बना है। उपन्यासकार का सामाजिक चित्रण पर विशेष ध्यान रहा है। यथार्थवादी दृष्टिकोण से पात्रों के चरित्र का स्वाभाविक विकास दिखाया गया है।

सन्तसिंह सेखों का उपन्यास 'लहू मिट्टी है' भी काफी प्रसिद्ध उपन्यास है। यह एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। कथा में शिथिलता है। ग्राम्य जीवन का अच्छा चित्रण किया गया है। करतारसिंह दुग्गल ने दो उपन्यास लिखे हैं :—(१) आंदरा तथा (२) नहुँ ते मास। परन्तु कोई विशेष प्रशंसा का पात्र वह न बन सका। उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की शैलियों के प्रयोग ने तथा पोठोहारी बोली ने उपन्यास की रोचकता को कम कर दिया है।

नरिन्दरपालसिंह ने तीन उपन्यास प्रस्तुत किये हैं :—(१) सेनापति (२) मलाह तथा (३) उनताली वहें। वस्तु का चयन इतिहास से किया गया है। वस्तु का सुघटन, पात्रों का स्वाभाविक चित्रण तथा वार्तालाप की दृष्टि से ये उपन्यास सफल कहे जा सकते हैं।

प्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम ने भी पंजाबी साहित्य

को तीन उपन्यास प्रदान किये हैं। इन तीन उपन्यासों के नाम 'डाक्टर देव', 'पिंजर' तथा 'आल्हणा' हैं। कवयित्री की भावुकता उपन्यास में भी वर्तमान है। कवयित्री अवैध सन्तानों के लिये एक शिशु-गृह खोलने का सुझाव रखती है।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य अनेक उपन्यासकारों ने पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया है। इन उपन्यासकारों में मुहिन्दरसिंह सरना रचयिता 'पीड़ाँ मले हार', गुरचरनसिंह रचयिता 'वगदी सी रावी' तथा तरलोकसिंह का नाम लिया जा सकता है। तरलोकसिंह ने ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत किये हैं। जोगथा फजलदीन का उपन्यास 'प्रभा' भी खासा चल पड़ा है। इसके अतिरिक्त अनेक सुन्दर उपन्यासों के अनुवाद भी किये गये है। इस क्षेत्र मे प्रो० करतारसिंह ने 'कौमी अवाना', 'करमा दी खेड' तथा 'दुनिये' सफल अनुवाद किये हैं। अन्य अनुवादकों में नरिन्दरसिंह सोन ने 'मजदूर', 'माँ', 'कैदी', परमिन्दरसिंह ने 'टपदी वास कुडी' नाम से अनुवाद प्रस्तुत किये हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास क्षेत्र में पंजाबी भाषा ने काफी साहित्य का सचय कर लिया है, परन्तु बंगला, हिन्दी, मराठी आदि भारत की अन्य भाषाएँ इस क्षेत्र में जितनी उन्नति कर चुकी हैं, उस तक पहुँचने में पंजाबी को काफी समय लगेगा। कार्य हो रहा है। नवीन उपन्यासकार क्षेत्र में आ रहे हैं तथा आशा की जा सकती है कि पंजाबी का उपन्यास साहित्य और भी उन्नति करेगा। परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जो वस्तु अपने पास न हो वह दूसरी भाषाओं से ग्रहण करने में झिझक न करनी चाहिये। तभी साहित्य शीघ्रता से उन्नति करेगा।

कहानी साहित्य

पंजाबी साहित्य में कहानी का प्रारम्भ बीसवीं शती से होता है। कहानी साहित्य के प्रारम्भिक काल के तीन लेखक कहे जा सकते हैं :—(१) भाई वीरसिंह, (२) मोहनसिंह वैद्य तथा चरनसिंह शहीद। भाई वीरसिंह का 'कलगीधर चमत्कार', 'गुरु नानक चमत्कार' में कहानी के रूप में अनेक घटनाएँ दी गयी हैं। मोहनसिंह वैद्य के कहानी संग्रहों के नाम 'रंग-बरंगे फूल', 'हीरे दीयाँ कणियाँ' तथा 'किसमत दा चक्कर' हैं। परन्तु इन में संग्रहीत कहानियों को सुन्दर कहानी नहीं कहा जा सकता। केवल घटना के अतिरिक्त इन में और कुछ नहीं मिलता। शहीद की कहानियाँ इन दोनों लेखकों से कुछ अधिक अच्छी हैं। इन्होंने लगभग सत्तर कहानियाँ लिखी हैं जो 'हसदे हन्जू' नाम से संग्रहीत हैं।

इसके पश्चात् कहानी के क्षेत्र में क्रमशः अकाली, बलवन्तसिंह चन्द्र, केसरसिंह कँवल, मोहनसिंह जोश, हीरासिंह दरद तथा जोशुआ फज़लदीन के नाम आते हैं। मोहनसिंह जोश की कहानियों में प्रगतिवादी प्रभाव है। हीरासिंह दरद भी पहले तो पुराने ढंग की ही कहानियाँ लिखते थे, परन्तु अब वे भी प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। इनके पश्चात् सरदार अभयसिंह का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने 'चम्बे दीयाँ कलियाँ' नाम से टाल्सटाय की कहानियों का अनुवाद किया। हरिकिशनलाल पराशर तथा मनजूर हैदर ने भी कई कहानियाँ लिखी हैं।

कहानी साहित्य में नानकसिंह का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। नानकसिंह के कहानी संग्रह ये हैं :—(१) हंजुआँ

दे हार, (२) सधरां दे हार, (३) सिद्धे होये फुल, (४) तसवीर दे दोवें पासे, (५) ठंडियां छांवां आदि। अपनी प्रारम्भिक कहानियों में नानकसिंह भी पुराने प्रचलित ढंग को ही अपनाता है। वह जीवन के सभी पक्षों को कहानी में समाविष्ट करने का प्रयास करता है, परन्तु बाद मे उसकी कहानियो में आधुनिक कहानियों के गुण भी आने लगते है।

सन् १९३३ ई० के पश्चात् गुरबख्शसिंह की कहानियां साहित्य में आयीं। इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह ये हैं :—(१) प्रीत कहानियां, (२) अनोखे ते इकल्ले, (३) वीना-विनोद, (४) नाग-प्रीत दा जादू, (५) भावी मैंना आदि। गुरबख्श सिंह की कहानियों में जीवन के विविध क्षेत्रों को स्थान मिला है। व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर वे मानव मात्र से सम्बन्धित हैं। इनकी प्रारम्भिक कहानियाँ प्राचीन ढग की हैं, परन्तु नवीन कहानियां आधुनिकता से परिपूर्ण है। इनका दृष्टिकोण भी अब प्रगतिवादी होता जा रहा है।

पंजाबी के कहानी साहित्य को आधुनिक कहानियो से .द्ध करने वाले लेखकों में विशेष रूप से तीन कहानीकारों का नाम लिया जा सकता है :—(१) संतसिंह सेखों, (२) करतारसिंह दुग्गल, तथा (३) सुजानसिंह। सतसिंह सेखों के प्रसिद्ध कहानी संग्रह दो हैं :—(१) समाचार तथा (२) कामे ते योधे। सेखों ने अंग्रेजी साहित्य का काफी अध्ययन किया है। उनके विचार प्रगतिवादी है। जीवन की वास्तविकता को सर्वप्रथम इन्होंने कहानियों में अंकित किया है। सेखों पुराने समाज के स्थान पर नवीन समाज का निर्माण करना चाहते हैं।

करतारसिंह दुग्गल ने सबसे अधिक कहानियां लिखी।

हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी सग्रह ये है :—(१) सवेर-सार, (२) पिप्पल-पत्तियाँ, (३) कुडी कहाणी करदी गई, (४) नवाँ घर तथा (५) नवाँ आदमी। अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में दुग्गल का दृष्टिकोण 'कला कला के लिये' था। इसके अतिरिक्त वासनात्मक प्रेम भी इनकी कहानियों में मिलता है, परन्तु इनका दृष्टिकोण भी वदलता जा रहा है।

कहानी के कौशल की दृष्टि से सबसे सफल कहानियाँ सुजानसिंह की वन पड़ी हैं। इनके तीन कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं:—(१) दुख-सुख, (२) मनुख ते पशू तथा (३) नरकाँ दे देवते। सुजानसिंह को जीवन का बड़ा गहरा अनुभव प्राप्त है। अपनी कहानियों में वे जीवन के दुखान्त चित्र अधिक अंकित करते हैं।

इन तीन कहानी लेखकों के साथ अन्य अनेक कहानीकारों ने पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया है। देवेन्द्र सत्यार्थी के दो कहानी संग्रह छप चुके हैं :—(१) रगपोश तथा (२) सोना गाची। इनकी कहानियों में प्रायः कथा का महत्त्व कम है तथा वातावरण का चित्रण अधिक किया जाता है। प्रो० मोहनसि का 'निकी निकी वासना' नाम से कहानियों का संग्रह छप चु है। अमृता प्रीतम ने भी दो कहानियों के संग्रह छपवाये हैं :-(१) कुंजियाँ तथा (२) छब्वी वर्हे बाद।

भारत के विभाजन के पश्चात् डॉ० मोहनसिंह को कहानी के क्षेत्र में काफी ख्याति प्राप्त हुई। इनके 'रंग तमा तथा 'दविन्दर वतोसी' दो कहानी सग्रह प्रसिद्ध हैं। अ कहानीकारों तथा उनके कहानी संग्रहों को इस प्रकार दिखा जा सकता है:—

गुरमुखसिंह मुसाफिर रचयिता—(१) वखरी दुनिा, (२) सस्ता तमाशा, (३) मुसाफरियाँ।

नौरंगसिंह—बोझल पड।

नरिन्दरसिंह सोच—राह जांदियां।

हरचरनसिंह—(१) सिद्धियां, (२) नवी सवेर।

गुरचरनसिंह—वण ते कसेर।

दविन्दरसिंह—दूर किनारे।

कुलवन्तसिंह विरक—छाह वेला।

हरीसिंह पिलवर—भक्खड।

महिन्दरसिंह सरना—मगना भरी सवेर।

जसवन्तसिंह कँवल—कडे।

करतारसिंह सूरी—अरश तों फरश।

सुरिन्दरसिंह नरूला—लोक-प्रलोक।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि पंजाबी कहानी साहित्य भी बहुमुखी प्रगति कर रहा है। अनेक होनहार, प्रतिभावान कहानीकार इसके कहानी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

नाटच साहित्य

पंजाबी साहित्य में नाटक का प्रारम्भ बीसवी शती से होता है। प्रारम्भ में अनेक नाटक संस्कृत से अनुवाद किये गये। इसके पश्चात् अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव में जहाँ साहित्य की अन्य अनेक विधाएँ विकसित हुई, वहाँ नाटक पर भी प्रभाव पड़ा, तथा पंजाबी का नाटक साहित्य भी अनेक बातों में पश्चिमी नाटकों के अनुरूप लिखा जाने लगा।

अनुवादित नाटकों में सर्वप्रथम डॉ० चरनसिंह ने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुतलम्' का अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके पश्चात् अन्य अनेक साहित्यकारों ने अनुवाद प्रस्तुत

किये। इन अनुवादकों के नाम इस प्रकार हैं :—

सरदार मानसिंह—विक्रमोर्वशी।

प्रो० परमिन्दरसिंह—मालविकाग्निमित्र।

शमशेरसिंह अशोक—मुद्राराक्षस।

इन अनुवादित नाटकों से प्रेरणा लेकर कुछ नाटककारों ने संस्कृत नाट्य परम्परा पर नाटक लिखे, परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिल सकी। ये नाटककार तथा इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

ब्रिजलाल शास्त्री—(१) पूरन, (२) सावित्री, (३) सुकन्या, (४) उदयन।

बाबा बुधसिंह—(१) सुन्दरी छल, (२) नार नवेली, (३) चन्दर हरी।

लाला किरपासागर—(१) महाराजा रणजीतसिंह, (२) डोडो जम्मवाल।

इन लेखकों के अतिरिक्त कुछ नाटककार ऐसे हुए जिन्होंने संस्कृत तथा पाश्चात्य, दोनों के नाट्य साहित्य से प्रेरणा लेकर नाटक लिखे, परन्तु इन नाटकों को भी शैली तथा नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से बहुत सुन्दर नाटक नहीं कहा जा सकता। इन नाटककारों में भाई वीरसिंह—राजा लखदातासिंह, गुरबख्शसिंह बैरिस्टर—मनमोहन तथा ब्रजमोहन, फीरोजदीन शरफ़—हीर सिआल का नाम लिया जा सकता है।

पंजाबी साहित्य में नवीन नाटकों की धारा के प्रवर्त्तन का श्रेय आई० सी० नन्दा को दिया जा सकता है। इनके तीन नाटक प्रसिद्ध हैं—(१) सुभद्रा, (२) लिल्ली दा वियाह, (३) शामू शाह। 'शामू शाह' पर शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मरचेंट आफ वेनिस' का प्रभाव है। नन्दा जी के नाटक

शैली तथा कौशल की दृष्टि से सफल आधुनिक नाटक कहे जा सकते हैं। इन नाटकों का सफल अभिनय हुआ तथा इनसे प्रेरणा लेकर अनेक नाटककारों ने सफल अभिनेय नाटकों की रचना की है।

हरचरनसिंह ने पंजाबी साहित्य को सबसे अधिक नाटक प्रदान किये हैं। इनके नाटक अभिनेय हैं। इनमें समाज तथा इतिहास से कथा का चयन किया गया है। इनके प्रमुख नाटक ये हैं :—(१) कमला कुमारी, (२) राजा पोरस, (३) दूर दुराडे शहरों, (४) अनजोड़, (५) खेडन दे दिन चार, (६) दोप, (७) पुन्नियां दा चन्न।

'कलाकार' तथा 'नारकी' नाटक लिखकर संतसिंह सेखों ने भी काफी ख्याति प्राप्त की है। इनके नाटकों में कथा कम तथा विचार अधिक हैं। 'नारकी' नाटक में इन्होंने चोर-बाजारी करने वालों के काले कारनामों पर प्रकाश डाला है। नाट्य-कौशल की दृष्टि से ये नाटक काफी सफल कहे जा सकते हैं। सन् १९५४ ई० में बलवन्तसिंह गार्गी ने 'लोहा कुट' नामक नाटक लिखा। आधुनिक नारी की स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा तथा पुरुष के अत्याचारों के प्रति विद्रोह इसमें चित्रित किया गया है। गार्गी जी ने कुछ और नाटक भी लिखे हैं, जो इस प्रकार हैं :—(१) घुग्गी, (२) सैल पत्थर, (३) नवां मुढ, (४) केसरो। इन नाटकों में प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। आधुनिक पंजाबी नाट्य साहित्य में इन सभी नाटकों का विशेष स्थान है।

उपर्युक्त प्रमुख तथा प्रसिद्ध नाटककारों के अतिरिक्त अन्य अनेक नाटककारों ने नाटक लिखे हैं तथा अनेक अपनी प्रतिभा का विकास भी कर रहे हैं। इन नाटककारों को हम

प्रकार दिखाया जा सकता है :—(१) गुरदियालसिंह खोसला
(२) गुरदियालसिंह फुल, (३) रोशनलाल आहूजा, (४
गुरबख्शसिंह प्रीत लड़ी, (५) गुरशलसिंह दरदी, (६) मेज
मक्खणसिंह, (७) नरिंजनसिंह वर्णत, (८) निहालसि
रस। इन नाटककारों में गुरबख्शसिंह के 'राजकुमारी लतिक
तथा 'प्रीत मणी', गुरदियालसिंह खोसला का 'बूहे बैठो ध
गुरदियालसिंह फुल के 'कालजियेट', 'जोड़ी', 'साथी' त
'पिता-पियार' आदि नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से मध्य
श्रेणी के नाटक कहे जा सकते हैं। अभिनेयता का गुण इन
पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पजा
नाट्य साहित्य ने खासी उन्नति की है, परन्तु अभी अच
नाटकों का अभाव ही है। पजाबी नाटककारों को हिन्द
बँगला, अंग्रेज़ी आदि के उन्नत नाट्य साहित्य से प्रेरणा लेक
नाटकों की रचना करनी चाहिये। केवल अभिनेय होने मात्र
नाटक श्रेष्ठ नहीं हो जाता। नाटक के अन्य गुण मानवी
अन्तर्द्वन्द्व, नाटकीयता, सम्वादों का तीखापन आदि भी हो
ही चाहिएँ।

एकांकी साहित्य

एकांकी विश्व के सभी साहित्यों में बहुत बाद की उप
है। सर्वप्रथम यूरोप में इसकी उपज १६वीं शती के अन्ति
वर्षों में हुई थी। पंजाबी साहित्य में बीसवी शती में एकांकी क
रचना होने लगी। प्रारम्भ काल में जो एकांकी लिखे गये, उन
सफल एकांकी नहीं कहा जा सकता। संकलन-त्रय तथा संक्षेप क
इनमें अभाव ही पाया जाता है। अच्छे एकांकी सन् १६३० ई

के बाद प्रस्तुत किये गये।

सर्वप्रथम आई० सी० नन्दा ने 'दुल्हण' तथा 'बेबे राम भजनी' नाम के दो एकाकी लिखे। बाद मे सन् १९५२ ई० मे न्होंने अपने चार एकाकियों का एक सग्रह छपवाया। इन एकाकियो को एकाकी कौशल की दृष्टि से सफल एकाकी कहा जा सकता है। 'चोर कौण' नामक एकाकी का विस्तार आवश्यकता से अधिक है।

काल क्रम के अनुसार डॉ० मोहनसिह ने सर्वप्रथम एकाकी संग्रह प्रकाशित करवाया। इस सग्रह का नाम 'पखडियाँ' है। ाला किरपासागर ने भी 'रणजीतसिह' नामक नाटक के न्त में 'भुगा' नामक एकांकी प्रस्तुत किया है। गुरदियाल-सिह खोसला ने छः एकांकी 'बेघरे ते होर इकागी' नाम से छपाये। पजाब के विभाजन से सम्बन्धित वस्तु को अपनाया गया है। एकाकी-कौशल के आधार पर 'जुतियाँ दा जोड़ा' सुन्दर एकांकी कहा जा सकता है। लेखक ग्रामीण पात्रों को स्वाभाविक रूप में ठीक प्रकार से प्रस्तुत नही कर पाया है।

डॉ० रोशनलाल आहूजा ने दो एकाकी सग्रह छपवाये :—(१) परिवर्तन तथा (२) इकाग। इनके एकांकियों में पात्रों की संख्या अधिक है। कथा की कमी मे एकाकी रोचक नही रह पाये है। प्रो० अमरीकसिह का भी एक एकाकी सग्रह 'जीवन झलकाँ' नाम से प्राप्त होता है।

सरदार गुरबख्शसिंह ने 'राजकुमारी लतिका' के अन्त में तीन एकाकी भी दिये हैं। इनमें से 'प्रीत मुकट' नामक एकांकी का अनेक बार अभिनय हो चुका है। सन् १९३९ ई० में हरचरन-सिंह का एकाकी सग्रह 'जीवन लीला' छपा। इसके बाद और भी संग्रह प्रकाशित हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—'सपत

मिट्टी', 'पज गीदड़ा', 'गोभा राज', 'पज परमान'। हरचरन-सिंह के प्रायः सभी एकांकी अभिनेय तथा कला की दृष्टि से सुन्दर कहे जा सकते हैं। इन्हीं दिनों सन्त इन्दरसिंह चकरवर्ती का एकांकी संग्रह 'पूरब-पच्छम' छपा।

इनके पश्चात् करतारसिंह दुग्गल का एकांकी संग्रह 'इक सिफर सिफर' छपा। सन्तसिंह सेखों का प्रसिद्ध एकांकी संग्रह 'छे घर' भी इसके एक वर्ष पश्चात् छपा। सेखों के एकांकी जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर चले हैं। कला की दृष्टि से इन्हें सुन्दर एकांकी कहा जा सकता है। इसके पश्चात् इनके दो एकांकी संग्रह और छपे हैं —(१) तपिया किउं खपिया तथा (२) नाट सुनेहे।

इनके पश्चात् गुरदियालसिंह फुल का नाम एकांकी साहित्य में लिया जा सकता है। इनके प्रसिद्ध एकांकी संग्रह इस प्रकार हैं —(१) हउके, (२) पैसा, (३) ढोलदी लाट, (४) कणक दा बोहल। फुल ग्राम निवासी है। ग्रामीण पात्रों का चित्रण वह बड़ी सुन्दरता से कर पाता है। एकांकियों में सदाचार तथा आचरण की शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। बलवन्त गार्गी के एकांकी भी खासे सुन्दर बन पड़े हैं। गार्गी के एकांकी संग्रह इस प्रकार हैं :—(१) कुमारी टीसी, (२) दो पासे, (३) दसवन्ध, (४) वेबे, (५) पतण दी बेड़ी आदि। गार्गी के अनेक एकांकी अभिनीत किये जा चुके हैं। गार्गी नाटकीय व्यंग्य का सुन्दर प्रयोग करता है।

इस प्रकार पंजाबी का एकांकी साहित्य विकसित तथा समृद्ध होता जा रहा है। आशा की जा सकती है कि पंजाबी का एकांकी साहित्य भी अन्य भारतीय भाषाओं के समान शीघ्र ही समृद्ध हो जावेगा।

निबन्ध साहित्य

पंजाबी के निबन्ध साहित्य में बहुत कम कार्य हो पाया है। शिक्षा का माध्यम न होने के कारण पंजाबी गद्य-साहित्य की इतनी उन्नति न हो सकी, जितनी हिन्दी गद्य-साहित्य की। निबन्ध गद्य की कसौटी माना जाता है। अत निबन्ध साहित्य की विशेष उन्नति न हो सकी।

सर्वप्रथम निबन्धकार पंडित शरधाराम फलौरी माने जाते हैं। इनकी दो पुस्तकें उपलब्ध होती है, जो इन्होंने कुछ अंग्रेज अफसरों के कहने पर लिखी थी। इनकी पुस्तकों के नाम ये हैं:—(१) सिक्खाँ दे राज दी विथिया, तथा (२) पंजाबी बात-चीत। इन्होंने पंजाब का सामाजिक जीवन चित्रित किया है। इनके पश्चात् लाला बिहारीलाल का नाम आता है। इन्होंने 'विदिया रतनाकर' नामक संग्रह में अनेक शिक्षा सम्बन्धी लेख लिखे हैं। इनकी भाषा सरल है। हिन्दी का भी प्रभाव है।

इनके पश्चात् पंजाबी मे समाचारपत्र निकलने लगे। इन समाचारपत्रों में सम्पादकीय लेखों के रूप मे निबन्ध लिखे जाते रहे। इन सम्पादकों में भाई दित्तसिंह, चरनसिंह तथा भाई वीरसिंह के नाम लिये जा सकते हैं। इनमे सबसे अधिक योगदान भाई वीरसिंह का रहा है। इन्होंने जहाँ पंजाबी गद्य का स्वरूप स्थिर किया, वहाँ अनेक लेखकों को प्रेरणा दी।

इनके पश्चात् प्रिंसिपल जोधसिंह का नाम आता है। इन्होंने 'गुरमत निरणै' में सिक्ख धर्म पर व्याख्यात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये। प्रो० जगदीशसिंह ने 'साडे रसमो रिवाज' तथा

'गुफलदार बच्चे' लेख लिखे। इनके पश्चात् और भी अनेक निबन्धकार पंजाबी साहित्य में उत्पन्न हुए। इनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—(१) प्रो० प्रीतमसिंह, (२) गुपालसिंह दरदी, (३) ऐस० ऐस० अमोल, (४) हीरासिंह दरद, (५) डॉक्टर हरदिलसिंह ढिल्लो, (६) संतसिंह सेखों आदि।

उपर्युक्त निबन्धकारों के पश्चात् प्रो० पूरनसिंह का नाम लिया जा सकता है। पंजाबी में सर्वप्रथम साहित्यिक निबन्ध इन्होंने ही रचे हैं। विभिन्न विषयों पर इनके १४ लेख मिलते हैं। हास्य-रस से भरपूर लेख सर्वप्रथम चरनसिंह शहीद ने लिखे हैं। समाज के विभिन्न पक्षों को हास्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सबसे उत्तम लेख सरदार गुरबख्शसिंह के कहे जा सकते हैं। इनके निबन्धों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ प्रसिद्ध लेख इस प्रकार हैं :—(१) सावीं-पधरी जिन्दगी, (२) प्रीत-मारग, (३) नवां दिवाला, (४) साडे वारस, (५) इक दुनिया ते तेरीं मुफ़ने, (६) मेरियां अभुल यादां आदि। प्रिंसिपल तेजासिंह के निबन्ध भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। इनके निबन्ध संग्रह ये हैं :—(१) नवियां सोचां, (२) सहिज सुभा, (३) सभियाचार आदि।

जीवनी साहित्य

जीवनियों में सर्वप्रथम भाई वीरसिंह जी ने 'गुरुनानक चमत्कार' तथा 'कलगीधर चमत्कार' लिखकर गुरु नानक तथा गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डाला है। परन्तु इन्हें आदर्श जीवनी नहीं कहा जा सकता। लेखक का उद्देश्य जीवन पर प्रकाश डालना न होकर धार्मिक

नता के मन में—गुरुओं के अलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शन रके—सिक्ख धर्म के लिये श्रद्धा उत्पन्न करना है। इनके थ ही अनेक व्यक्तियों ने ऐतिहासिक जीवनियाँ प्रस्तुत की । इनमें कुछ के नाम इस प्रकार है :—करमसिंह, बाबा रसिंह होती मरदान, प्रो० गंडासिंह तथा सतराम कोहली।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक लेखकों ने अपने समकालीन क्तियो पर जीवनियाँ लिखी हैं। इन लेखको के नाम तथा नाएँ इस प्रकार है :—

मुनशासिंह दुखी—जीवन भाई मोहनसिंह वैद्य।
हरदियालसिंह सीकरी—इक सुनहरी दिल।
प्रो० करतारसिंह—जीवन कथा गुरुनानक तथा गुरु गोविन्दसिंह।
हजारासिंह गुरदासपुरी—जस्सासिंह रामगढिया।

इन जीवनियों के अतिरिक्त पंजाबी साहित्य में कुछ त्मकथाएँ भी लिखी गयी है। इन कथाओं मे से कुछ इस ार हैं :—

(१) नानकसिंह की 'मेरी दुनिया'।
(२) मास्टर तारासिंह की 'मेरी याद'।
(३) प्रो० तेजासिंह की 'आरसी' आदि।

महात्मा गांधी को आत्मकथा का भी पंजाबी में अनुवाद हो चुका है।

यात्रा वृत्तान्त

यात्रा वृत्तान्त सम्बन्धी गद्य साहित्य की पाँच-छः रचनाएँ ही पंजाबी मे उपलब्ध होती हैं। सर्वप्रथम लालसिंह कमला अकाली ने 'मेरा वलैती सफर नामा' रचा। इसकी भाषा बड़ी

मीठी तथा साहित्यिक है। इसके पश्चात् पत्रों के रूप में डॉ० शेरसिंह ने 'मेरी प्रदेश यात्रा' लिखी। इसकी भी भाषा अत्यन्त सरल तथा मीठी है। इनके अतिरिक्त कुछ लेखक तथा उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

डॉ० परदुमनसिंह—अमरीका दा सफर।
डॉ० हरदिलसिंह ढिल्लों—मलाया यात्रा।
डॉ० दविन्दरसिंह—सैल-सपाटे।
नरिन्दरपालसिंह—देशां-प्रदेशां विचों आदि।

साहित्यिक समालोचनाएँ

पंजाबी साहित्य में साहित्य-समालोचना, इतिहास, खोज सम्बन्धी कार्य अधिक नहीं हुआ है। सर्वप्रथम बाबा बुधसिंह ने 'हंस-चोग', 'कोइल कू', 'बंबीहा बोल' नामक तीन पुस्तकें लिखकर प्राचीन कविता की कुछ खोज की। परन्तु ये पुस्तकें बहुत ऊँचे स्तर की नहीं कही जा सकतीं। फिर भी परवर्ती समीक्षकों के लिये इन्होंने सामान अवश्य एकत्रित कर दिया।

साहित्य सम्बन्धी वास्तविक खोज डॉ० मोहनसिंह से प्रारम्भ होती है। इन्होंने सर्वप्रथम अंग्रेजी में पंजाबी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया। इसके बाद पंजाबी में 'पंजाबी बोलां', 'वारिसशाह', 'शाह हुसैन' आदि सूफी कवियों के सम्बन्ध में खोज भरे लेख लिखे। इनसे प्रेरणा प्राप्त करके अनेक विद्वानों ने पंजाबी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया। इनमें मुख्य-मुख्य इस प्रकार हैं:—डॉ० गुपालसिंह दरदी, प्रो० हरमिन्दरसिंह, प्रो० सुरिन्दरसिंह कोहली, प्रो० सुरिन्दरसिंह नरूला, किरपालसिंह कसेल, हरचरनसिंह, डॉ० बनारसीदास तथा मौला बख्श कुश्ता।

पंजाबी भाषा तथा विशिष्ट कवियों को लेकर भी अनेक साहित्यकारों ने समालोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं। कुछ पुस्तकें तथा पुस्तककारों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. डॉ० चरनसिंह—बाणी बिओरा।
२. जी० बी० सिंह—१. प्राचीन बीड़ां, २. गुरमुखी लिपि दा जनम ते विकास।
३. प्रो० दीवानसिंह—फरीद दर्शन।
४. डॉ० लाजवन्ती—पंजाबी सूफी कवि।
५. हरिन्दरसिंह रूप—भाई गुरदास।
६. प्रो० प्रीतमसिंह—फरीदानामा।
७. डॉ० गुपालसिंह दरदी—१. पंजाबी रोमांटिक कवि, २. साहित दी परख।
८. प्रो० हरदियालसिंह—साहित दे रूप ते विचार।
९. प्रो० सुरिन्दरसिंह कोहली—पंजाबी साहित (वस्तू ते विचार)।
१०. डॉ० बलबीरसिंह—पंजाब दी रमज भरी कविता।
११. करतारसिंह दुग्गल—अज-कल दी कविता।
१२. प्रो० हरबंससिंह—भाई वीरसिंह ते उन्हां दी रचना।
१३. डॉ० शेरसिंह—साहित समालोचना।
१४. प्रो० किरपालसिंह कसेल तथा प्रो० परमिंदर सिंह—साहित दे रूप।
१५. प्रो० गुरचरनसिंह—१. साडे नाटककार, २. [illegible] नाटककार।
१६. प्रो० बसंतोरसिंह दिल—१. पंजाबी कहानी दा विकास, २. प्रो० मोहनसिंह दी कविता।

इन सबके अतिरिक्त प्रिंसिपल तेजासिंह ने भी अनेक विषयों पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं। पंजाबी के

पंजाबी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास भी प्रस्तुत किया है। परन्तु कुछ आलोचकों का मत है कि तेजासिंह जी कवियों का उत्साह बढ़ाने के लिये आवश्यकता से अधिक प्रशंसा भी कर जाते हैं।

इस प्रकार पंजाबी साहित्य में अनेक समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी गई हैं, इतिहास भी लिखे गये हैं, परन्तु अभी तक कोई भी ऐसा इतिहास प्रस्तुत नहीं किया जा सका है, जिसको सभी विद्वान् एक स्वर से स्वीकार करें। आशा है, निकट भविष्य में पंजाबी का आलोचनात्मक साहित्य और समृद्ध होगा।

बनाने का इन्होंने खूब प्रयास किया था। इनके द्वारा की गई सेवा पंजाबी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय रूप से अंकित रहेगी। इनके द्वारा रचित गद्य का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

'जोकन हिन्दी विच तुलसीदास घर-घर, गली-गली विच मशहूर है, इसे तहाँ वारस दे बैंत पिंड, शहिर, पैली, बाजार, जट-कराड़ सभ सवाद ला-ला के पढ़दे हन। इक ते किस्सा हीर-राँझा दा, दूजे लिखण वाले वारस होरी, सोने ते सुहागे दा कम्म होया।'

गुरबख्शसिंह प्रीतलड़ी

इन्होंने अमेरिका से उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा सिविल इंजीनियर बनकर भारत वापिस आये। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। सन् १९३२ ई० में इन्होंने प्रीतलड़ी नामक मासिक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

निबन्ध साहित्य—(१) मावीं पधरी जिन्दगी, (२) स्वपूरनता दी लगन, (३) नवी तकड़ी दुनिया, (४) नवां निवाला, (५) गुल्हा दर, (६) परम मनुख, (७) साडे वारस आदि।

कहानी संग्रह—(१) अनोखे ते इकल्ले, (२) वीना विनोद, (३) प्रीत कहाणियाँ, (४) प्रीतां दे पहिरेदार आदि।

नाटक—(१) राजकुमारी लतिका तथा (२) प्रीत-मनी।

[illegible]ड़ी—(१) प्रीत-मुकट, (२) साडी होणी दा [illegible]r, (३) पूरब-पच्छम आदि।

अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में इन्होंने अमरीकी जीवन को अपनाने पर बल दिया है। परन्तु अब आपका दृष्टिकोण यथार्थवादी होता जा रहा है। कहानियों में प्रेम पर बल दिया गया है। कहीं-कहीं पर कहानियों में उपदेशात्मकता भी पाई जाती है। गद्य में इन्होंने समाज के झूठे तथा सारहीन रीति-रिवाजों और कुरीतियों का खण्डन किया है। विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे गये है।

इनकी गद्य-शैली कविता की भांति लय पूर्ण तथा प्रवाह युक्त है। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार है। शब्दों का चुनाव भी सुन्दरता से किया गया है। इनकी शैली अपनी ही होती है। पढ़ने पर बिना बताए ही पता लग जाता है कि यह गुरबख्शसिंह की रचना है। पंजाबी साहित्य में इनका महत्व-पूर्ण स्थान है।

प्रिंसिपल तेजासिंह

प्रिंसिपल तेजासिंह ने व्याख्यात्मक लेख लिखे हैं। इनका साहित्य बहुत कम है, परन्तु जो भी है, वह ऊँचे स्तर का है। इनकी रचनाएं इस प्रकार हैं—(१) नवीआं सोचां, (२) सहिज सुभा, (३) सभिआचार, (४) साहित-दर्शन. (५) टीका जपुजी साहिब, (६) सबदारथ आदि। इन्होंने साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों को अपनाया है। 'आरसी' में इन्होंने अपनी आत्मकथा प्रस्तुत की है। इन्हें धार्मिक लहरों, साहित्य के मार-दंड आदि का गहरा ज्ञान था। इनके गद्य में श्रेष्ठ गद्य के लगभग सभी गुण उपलब्ध होते हैं। इनकी शैली में स्पष्टता, संक्षिप्तता, सरलता तथा प्रवाह आदि अनेक गुण विद्यमान है। कहीं-कहीं हास्य-रस भी इनके गद्य में उपलब्ध

होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इनका गद्य श्रेष्ठ गद्य का एक नमूना है।

कमला अकाली

इनका पूरा नाम सरदार लालसिंह कमला अकाली है। ये लुधियाना के रहने वाले हैं। इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। कहा जाता है कि इन्होंने कमला अकाली नाम की एक अत्यन्त कारुणिक कहानी लिखी थी, जिसके कारण ही इनके नाम के साथ भी कमला अकाली शब्द जुड़ गया है। पंजाब में ये अकाली लहर के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनकी तीन रचनाएँ हैं :—(१) सरब लोह दी वहुटी, (२) मेरा वलैती सफर नामा, (३) जीवन-नीति। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'अकाली पत्रिका' तथा 'अजीत' का सम्पादन भी किया है।

इनका गद्य, कला की दृष्टि से श्रेष्ठ गद्य का उदाहरण कहा जा सकता है। सरलता, स्वाभाविकता तथा प्रवाह इनकी गद्य-शैली की तीन विशेषताएँ हैं। इनका यात्रा वृत्तान्त पढ़ने पर तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पाठक स्वयं यात्रा कर रहा है। भाषा इनकी सरल, मीठी तथा मुहावरेदार है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

'यूरप विच पैसा ही माँ-बाप है, जो कम्म होर यतन नाल न बण सके उह पैसा वाहियाँ ठीक हो जांदा है ते जिथे पैसा वी ना काम बणा सकें, तीवीं कम्म कढ लैंदी है।'

बाबा प्रेमसिंह

बाबा प्रेमसिंह का जन्म सन् १८८४ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार गंडासिंह है। ये नाजिम के पद पर कार्य करते थे। इनकी प्रारम्भ से ही खोज की ओर रुचि थी।

एक बार भाई वीरसिंह से मुलाकात होने पर इनका ध्यान पंजाब के वीरों का इतिहास प्रस्तुत करने की ओर गया।

इन्होंने चार ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी है :— (१) बाबा फूलासिंह अकाली, (२) जीवन वृत्तान्त महाराजा रणजीतसिंह शेरे पंजाब, (३) कँवर नौनिहालसिंह, (४) जीवन इतिहास सरदार हरिसिंह नलवा, (५) सिख राज दे उसरइये (दो भाग)।

इनकी ऐतिहासिक पुस्तकों के कारण ही इनका महत्त्व है। पंजाब के जन-जीवन में देश-प्रेम की भावना जगाने तथा अपने पूर्वज वीरों के बलिदान से उत्साह का भाव भरने में इनका साहित्य बहुत सफल रहा है।

नानकसिंह

नानकसिंह का जन्म सन् १८६७ ई० मे जेहलम ज़िले के चक्हमीद नामक गाँव में हुआ था। इनका पहला नाम हंसराज था। बाद में इन्होंने सिंह सभा गुरुद्वारे के ग्रन्थी ज्ञानी बाग-सिंह की संगति से सिक्ख धर्म को स्वीकार किया।

पंजाबी साहित्य में जितना अधिक साहित्य इन्होंने प्रस्तुत किया, उतना किसी अन्य ने नहीं किया है। कुछ कविता संग्रह तथा लगभग तीन दर्जन उपन्यास ये अब तक लिख चुके हैं। इनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

कविता—सतगुर महिमा।

आत्मकथा—मेरी दुनिया।

उपन्यास—१. मत्रेई माँ, २. काल चक्कर, ३. मिट्ठा महुरा, ४. प्रेम-संगीत, ५. फ़लादी-फुल, ६. हञ्झुआं दे हार, ७. मिधे होये फूल, ८. पतझड़ दे पंछी, ९. संग्राम, १०. चिट्टा लहू, ११. पियार दी दुनिया, १२. गरीब दी दुनिया, १३.

रजनी, १४. अधखिड़िया फूल, १५. ठंडियाँ छाँवाँ, १६. पवित्तर पापी, १७. प्राशचित, १८. जीवन-संग्राम, १९. धुंदले परछावें, २०. लव-मैरेज, २१. पत्थर-कावा, २२. तसवीर दे दोवें पासे, २३. मँझधार, २४. दूर किनारा, २५. खून दे मोहिले, २६. अग दी खेड, २७. चित्रकार, २८. टुट्टी होई पतंग, २९. आदम-खोर आदि।

नानकसिंह ने मुख्य रूप से सामाजिक बुराइयों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। एक प्रकार से इनके सभी उपन्यास समस्या-प्रधान कहे जा सकते हैं। परन्तु उन समस्याओं का हल देने में वह असफल ही रहा है। प्रेम तथा धार्मिक आडम्बरों को भी उसने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। भाषा वह पात्रानुकूल ही प्रयुक्त करता है। कहीं-कहीं पर भावातिरेकता के कारण कथा शिथिल भी हो जाती है। कुछ अस्वाभाविकताएँ भी मिलती हैं। परन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनके उपन्यास पंजाबी साहित्य में सुन्दरतम उपन्यास हैं। इन पर हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचन्द का प्रभाव है। उपन्यासों में मध्य श्रेणी का ही चित्रण किया गया है। हो सकता है, उपन्यासकार स्वयं मध्य श्रेणी का है—इसलिए ऐसा हुआ हो। अधिक संख्या में उपन्यास लिखने के कारण इनके उपन्यासों में नवीनता का भी अभाव है। प्रायः एक उपन्यास की समस्या तथा पात्र दूसरे में दुहराये जाते हैं। यदि ये कुछ कम उपन्यास लिखते तो शायद अधिक सुन्दर उपन्यास दे पाते। 'चिट्टा लहू' को ये अपना सर्वोत्कृष्ट उपन्यास स्वीकार करते हैं। 'चिट्टा लहू' वास्तव में सुन्दर उपन्यास है। पंजाबी उपन्यास साहित्य की जो सेवा इन्होंने की है, उससे ये सदा के लिये अविस्मृत रूप से अमर

संतसिंह सेखों

संतसिंह सेखों बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान तथा कलाकार हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण से इन्होंने अनेक विधाओं में पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया है। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं को इन्होंने अपना विषय बनाया है। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

नाटक—(१) कलाकार, (२) नारकी।

एकांकी संग्रह—(१) छः घर, (२) तपिया किउँ खपिया।

उपन्यास—लहू मिट्टी।

कहानी संग्रह—(१) समाचार, (२) अच्छी बात, (३) कामे ते योधे।

समालोचना—१. प्रसिद्ध पंजाबी कवि, २. साहितारथ।

संतसिंह सेखों का सभी विधाओं में लिखा हुआ साहित्य उच्चकोटि का साहित्य है। भाषा, भाव तथा शैली सभी की दृष्टि से इनका साहित्य सुन्दर साहित्य कहा जा सकता है। इनके नाटक तथा एकांकी तो विशेष रूप से प्रशंसनीय हैं। इनका महत्त्व जहाँ पंजाबी भाषा को समृद्ध करने के कारण है, वहाँ इस बात में भी है कि इन्होंने अपने समकालीन लेखकों को प्रोत्साहित किया तथा श्रेष्ठ साहित्य प्रस्तुत कर उनका मार्ग-दर्शन किया।

सुविन्दरसिंह उप्पल

सरदार सुविन्दरसिंह उप्पल जी का जन्म रावलपिंडी के धमिहाल गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार फकीरसिंह उप्पल है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हो

हुई। आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की। गार्डन कॉलिज, रावलपिंडी से आपने एम० ए० इंगलिश में पास किया। इसके पश्चात् पंजाबी में भी एम० ए० पास किया। आजकल आप "श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलिज" में पंजाबी के अध्यापन का कार्य करते हैं तथा "पंजाबी शिक्षा-मंडल", दिल्ली विश्व-विद्यालय के सदस्य हैं।

रचनाएँ—आलोचनात्मक—१. पंजाबी कहानीकार, २. पंजाबी साहित बारे।

कहानी—१. कुड़ी पोठोहार दी, २. ढहिंदे मुनारे। ३. भरा-भरावाँ दे।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर आपके अनेक शोध-पूर्ण निबन्ध-पत्रों में छपते रहते हैं। "ढहिंदे मुनारे" तथा "भरा भरावाँ दे" आपके दो कहानी-संग्रह दिल्ली विश्व-विद्यालय की "पंजाबी ऑनर्स" परीक्षा के पाठयक्रम में निर्धारित रचनाएँ है। इसके अतिरिक्त आपने "पजाबी कहानी जन्म और विकास" नामक अपना शोध प्रबन्ध दिल्लो विश्वविद्यालय को पी-एच० डी० की उपाधि के लिये प्रस्तुत किया है।

सरदार सुविन्दरसिंह उप्पल एक अच्छे कहानी लेखक हैं। आपके निर्माण का अधिक श्रेय आपकी जन्म-भूमि दमिहाल गाँव को दिया जा सकता है। यह गाँव श्री मोहनसिंह, करतार सिंह दुग्गल तथा हरनाम सिंह शान जैसे साहित्यकारों की जन्मभूमि रहा है। गाँव के साहित्यिक वातावरण ने ही आपके मन में साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की तथा विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

अपनी कहानियों में लेखक प्रायः आशावादी रहा है। "भरा-भरावाँ दे" नामक प्रतीकात्मक कहानी में लेखक हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्खों को तीन सगे भाइयों के रूप में प्रस्तुत

करता है। इन्ही तीनो प्रतीकों के माध्यम से वह भारत के विभाजन से लेकर कश्मीर पर आक्रमण तक की घटनाओं को चित्रित करता है। लेखक के मन को हिन्दू तथा मुसलमानों के आपसी झगड़ों से दुःख होता है तथा वह कहानी के अन्त में दोनों भाइयो को प्रेम से गले मिलता दिखाता है।

लेखक प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित है। अपनी अनेक कहानियों में वह ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि के भेद-भाव के प्रति रोष व्यक्त करता है। अमीरो का धन के द्वारा गरीबों के अधिकारों का हनन उसे सह्य नही है।

भाव तथा विषय की दृष्टि से सुन्दर होते हुए भी कहानियों में कही-कही घटना विस्तार अधिक आ गया है; जिससे कहानी की शैली के प्रवाह में कमी आ गई है। भाषा सरल तथा साहित्यिक है। लेखक का भाषा पर अधिकार है, तथा वह भाषा में भाव के अनुरूप ही शब्दो का चयन करता है।

लेखक अभी भी पंजाबी साहित्य की सेवा में रत है। आशा की जा सकती है कि उसके द्वारा और भी अधिक सुन्दर साहित्य का सृजन होगा।

डॉ० सुरेन्दरसिंह कोहली

डॉ० सुरेन्दरसिंह कोहली का जन्म रावलपिंडी के शाहनूरपुर नामक स्थान में हुआ था; परन्तु आपका पालन-पोषण दमिहाल गाँव में ही हुआ है। आपके पिता का नाम सरदार सन्तसिंह है। प्रारम्भिक शिक्षा तो आपकी गाँव में ही हुई; परन्तु उच्च शिक्षा "गार्डन कॉलिज" रावलपिंडी मे हुई। आपने वहाँ से एम० ए० इंगलिश में पास किया। बाद में आपने एम० ए० पंजाबी में भी पास किया। पी-एच० डी० की उपाधि आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

पहले आप "श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कालिज" में पंजाबी विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे। बाद में आप दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में रीडर नियुक्त किये गये। आजकल आप पंजाब विश्वविद्यालय के पंजाबी विभाग में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य कर रहे हैं।

रचनाएँ—आलोचनात्मक—१. पंजाबी साहित दा इतिहास, २. पंजाबी साहित वसतू ते विचार, ३. प्रो० पूरनसिंह, ४. ए क्रिटीकल स्टडी आफ आदि ग्रन्थ।

उपन्यास—पारों आये चार जणें।

कविता—सावण बिजलियाँ।

सम्पादित—फुल-पत्तियाँ।

"फुल-पत्तियाँ" में आपने पंजाबी के सभी श्रेष्ठ कवियों की एक-एक सुन्दरतम कविता का संग्रह किया है। "ए क्रिटीकल स्टडी आफ आदि ग्रन्थ" आपका आलोचनात्मक शोध-प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध पर आपको दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी।

आपकी साहित्यिक अभिरुचि के निर्माण तथा विकास का श्रेय दमिहाल गाँव को ही दिया जा सकता है। यह गाँव अनेक ख्याति लब्ध साहित्यकारों की जन्म-भूमि रहा है। यों तो आपकी कहानियाँ तथा अन्य रचनाएँ भी सुन्दर हैं, परन्तु आपको पंजाबी साहित्य में विशेष ख्याति इतिहासकार के रूप में ही प्राप्त है। आपका "पंजाबी साहित दा इतिहास" एक अमूल्य ग्रन्थ है। आपने समस्त इतिहास को चार भागों में विभाजित करके उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ये चारों ही भाग समय विशेष पर आधारित न हो कर धारा विशेष से

सम्बन्धित हैं। आपने अनावश्यक विस्तार से बचने का सर्वत्र प्रयास किया है। पुस्तक को छोटा रूप देने की उत्कट इच्छा के कारण आप कवियों की रचनाओं के उदाहरण भी न दे पाये हैं। इतिहास में कवियों की जीवनी पर प्रकाश न डाल कर साहित्य सबंधी विवेचना ही अधिक प्रस्तुत की गई है। परिणाम-स्वरूप पाठक धारा विशेष से तो परिचित हो जाता है, परन्तु कवि विशेष के संबध मे सूक्ष्म तथा विशिष्ट ज्ञान से वंचित ही रहता है।

अन्त मे निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि डॉ० सुरेन्दरसिंह कोहली का उनके आलोचनात्मक व अन्य साहित्य तथा विशेष रूप से इतिहास के कारण पजाबी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। साहित्य के इतिहासकारों में आपका नाम अविस्मरणीय रूप से अंकित रहेगा।

सहायक ग्रन्थों की सूची

क्रम	नाम	लेखक या सम्पादक
१.	ए हिस्ट्री ग्राफ पजाबी लिटरेचर	डॉ० मोहनसिंह
२.	ए लिग्विस्टिक सर्वे ग्राफ इंडिया	जॉर्ज ग्रियर्सन
३.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४.	हिन्दी साहित्य का ग्रालोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
५.	हिन्दी काव्य-धारा	पं० राहुल साकृत्यायन
६.	हिन्दी साहित्य का ग्रादि काल	ग्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
७.	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० गोविन्दराम शर्मा
८.	पंजाबी सूफी पोयट्स	डॉ० लाजवन्ती रामकृष्ण
९.	ए हिस्ट्री ग्राफ पंजाबी लिटरेचर	प्रि० तेजासिंह
१०.	रोमांटिक पंजाबी कवि	डॉ० गोपालसिंह दरदी
११.	पंजाबी दी रमन भरी कविता	डॉ० बलबीरसिंह
१२.	सिख मुबारक लहरां (फुलवाड़ी)	स० हीरासिंह दरद
१३.	फुल-पत्तियाँ	डॉ० सुरेन्दरसिंह कोहली
१४.	भाई वीरसिंह ते मोहना दी रचना	प्रो० हरबस सिंह
१५.	पजाबी साहित दा इतिहास	डॉ० सुरेन्दरसिंह कोहली
१६.	पंजाबी साहित दा इतिहास	डॉ० गोपालसिंह
१७.	पजाबी साहित दा इतिहास	स० किरपालसिंह कसेल
१८.	पंजाबी साहित दा इतिहास	स० हरचरण सिंह